रितमाला—सं ३५

महाकवि तुलसीदास



हिन्दी प्रेस, प्रयाग

महाकवि तुलसीदास

लेखक

श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरा-मरणजं भयम् ॥

प्रकाशक

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रथम बार] [मूल्य ।)

मुद्रक और प्रकाशक
रघुनन्दन शर्म्मा, हिन्दी प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

महाकवि तुलसीदास

जन्म और बाल्यकाल

हमारा प्राचीन साहित्यिक इतिहास कुछ ऐसे अन्धकार में है कि उसके सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातों का अबतक हम लोग निश्चय-पूर्वक कोई ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके हैं। पुराने के लोगों का जीवन सरल और स्वाभाविक होता था। वे ोई भी काम यश और धन के लालच से नहीं, किन्तु अपनी

तृप्ति और संसार के कल्याण की इच्छा से करते थे। सम्बन्ध में कुछ लिखने की चलन भी उन दिनों नहीं थी उस चलन का परिणाम यह हुआ है कि प्राचीन काल के सुलेखक और सुकवियों को हम जानते भी नहीं हैं। यह मुश्किल है कि ऐसे कितने लोक-हितैषी महात्मा अभी हमारी दृष्टि से ओझल हैं।

पुराने समय के लोगों ने अपने सम्बन्ध में तो कुछ ही नहीं, किन्तु उस समय के दूसरे लोग भी उनके स में कुछ लिखने की ओर से लापरवाह रहे। इसका प यह हुआ कि अनेक व्यक्तियों के जीवन-मरण के सम्बन्ध सदा से ही अन्धकार में रहते आये। जहाँ जानकारी होती, वहीं लोग अटकल लगाया करते हैं। अलग-अलग के अलग ही अलग अटकल भी होते हैं। इसका परिणाम होता है कि एक ही आदमी के बारे में तरह-तरह की बा जाती हैं और आगे चल कर जो लोग उनके बारे में किसी की खोज या छानबीन करना चाहते हैं, वे तो और उलझन जाते हैं। एक ही व्यक्ति के बारे में उनके सामने अनेक त बातें रहती हैं। वे निश्चय नहीं कर पाते कि इनमें कौन सच्ची है और कौन झूठी। इसी उलझन में वे स्वयं भी एक अलग राय क़ायम कर लेते हैं और इस तरह, प्रा बात जानने का कोई रास्ता नहीं रह जाता।

महाकवि तुलसीदासजी के सम्बन्ध में भी यही बा

हुत खोज-ढूँढ़ करने के बाद भी, अभी तक तुलसीदासजी के
न्म-स्थान और जन्म-काल के सम्बन्ध में मतभेद है। रोज़
ये अनुसन्धान हो रहे हैं, रोज़ नये-नये तरीक़ों से छानबीन
ा जा रही है और इनके फल-स्वरूप बहुत सी बातें जानने में
ाई हैं, लेकिन यह तो अभी भी नहीं कहा जा सकता कि
बातें जानी गईं हैं, वे सब ठीक ही हैं। जिन बातों को
धिक लोगों ने स्वीकार किया है, उन्हें ही सच्ची समझ कर
नने के सिवा, और दूसरा उपाय क्या है?

तुलसीदासजी ऐसे-वैसे आदमी नहीं थे। वे ज़माने को
ल देनेवाले महाकवि थे। वे आत्मदर्शी महात्मा थे। वे
लौकिक भक्त थे। उनकी लिखी हुई रामायण नामकी कविता-
तक ने उन्हें अनन्त काल तक के लिए अमर कर दिया है।
मायण का ही दूसरा नाम राम-चरित-मानस है। यह हिन्दू
ाति का धर्मग्रन्थ है। ग़रीब हो या अमीर, छोटा हो या बड़ा,
ा-लिखा हो या अपढ़, लेकिन कोई ऐसा हिन्दू न होगा जिसने
मायण को एक बार पढ़ा या सुना न हो अथवा जिसे रामा-
ा के थोड़े-बहुत पद याद न हों। रामायण में नीति के अपार
देश भरे पड़े हैं। वह प्रेम और भक्ति के सम्बन्ध का एक
ूठा ग्रन्थ है। उसमें पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, पातिव्रत आदि
दर्शों का ऐसा सुन्दर और सरल चित्र खींचा गया है,
भारतीय सभ्यता के अतिरिक्त और किसी देश में नहीं
ा जा सकता।

ऐसे बड़े कवि, ऐसे बड़े तपस्वी, ऐसे बड़े भक्त कौन
कहाँ पैदा हुए थे और कब पैदा हुए थे, इस बात में अब
लोगों की एक राय नहीं हो सकी। लेकिन मतभेदों का उल
करना हमारा अभीष्ट नहीं है। जिसे अधिकतर लोगों ने
माना है, उसे ही हम भी ठीक मान कर गोस्वामी तुल
दासजी के चारित्र पर थोड़ा प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

तुलसीदासजी के माता-पिता युक्तप्रान्त के बाँदा ज़ि
न्तर्गत राजापुर नामक गाँव के रहनेवाले थे । ये पाराशर
के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। पिता का नाम आत्माराम
माता का हुलसी था। ये लोग सात्विक वृत्ति के ब्राह्मण
संवत् १५८९ में इन्हीं के घर तुलसीदास का जन्म हु
तुलसीदास का पहला नाम रामबोला था। पीछे इनके गु
यह नाम बदल कर तुलसीदास रख दिया और आगे चल
ये इसी नाम से मशहूर हुए।

हमारी हिन्दू जाति धर्म का पालन करने में शुरू से
बड़ी कठोर रही है। धर्म-पालन की इस कठोरता से अनेक
स्वयं उसकी ही अपरिमित हानि हुई है, किन्तु धर्म तो ध
ठहरा। उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? तुलसीदास
इसी धर्म-प्राण हिन्दू जाति में उत्पन्न हुए थे और उन्हें
यह दण्ड मिला कि बचपन में ही उन्हें माता-पिता के सु
वञ्चित होना पड़ा।

बात यह थी कि तुलसीदास का जन्म अभुक्त मूल में हुआ
ा । मूल में उत्पन्न हुई सन्तति, माता-पिता का अनिष्ट करने-
ली होती है, ऐसा हिन्दुओं का विश्वास है। विश्वास तो है,
किन मूल की उत्पत्ति रोकी कैसे जा सकती है? इसके लिए
ारी जाति ने उपाय बनाये हैं। मूल में उत्पन्न हुआ लड़का
तो माता-पिता के द्वारा त्याग दिया जाय, अथवा आठ वर्ष
क पिता उसका मुँह न देखे। लोग इन्हीं उपायों का अवल-
न करके छुटकारा पाते थे। तुलसीदास के माता-पिता ने भी
सीदास जैसे मूल में उत्पन्न होनेवाले निकम्मे लड़के को
स्ते पर ला कर डाल दिया, उसका त्याग कर दिया।

ऊपर हम कह चुके हैं कि धार्मिक कठोरता के कारण हिन्दू
ति की अपरिमित हानि होती रही है। तुलसीदास का,
ता-पिता के द्वारा त्याग, ऐसी हानियों का एक ज़बरदस्त
हरण है। माता-पिता के इस अन्ध विश्वास के परिणाम-
रूप यदि हमने तुलसीदास को खो दिया होता—जो वैसी
स्थिति में कुछ आश्चर्य की बात नहीं थी—तो हमारे देश,
ाज और साहित्य की कितनी बड़ी हानि होती, यह समझने
बात है।

किन्तु, परमात्मा को यह हानि मंजूर न थी। माता-पिता
ारा जब इनका त्याग कर दिया गया, तो नरहरिदास नाम
क साधु ने इन्हें अपने पास रक्खा और इनका पालन-पोषण
ा। नरहरिदास रोज़ बड़े तड़के गङ्गा-नहाने जाया करते थे।

एक दिन जब वे गङ्गा-स्नान के लिए, तट से नीचे सीढ़ि
उतरने लगे, तो उनके पैरों में कोई चीज़ लगी। उस स
काफ़ी उजाला नहीं हुआ था। उन्होंने झुक कर देखा तो
बालक था। उन्होंने बालक को उठा लिया और उसे अपने
ही रक्खा। इन्हीं गुरु नरहरिदास की कृपा से तुलसी
का भगवान रामचन्द्र पर अटल अनुराग जन्मा और
चरित-मानस की रचना करके वे चिरकाल के लिए अ
हो गये।

पहले तुलसीदासजी अपने गुरु के साथ अनेक तीर्थों
घूमते रहे और उसी समय गुरु के मुँह से, अनेक बार, उ
राम-कथा सुनी। शुरू-शुरू में तो इनके ध्यान में राम-कथा
बहुत महत्त्वपूर्ण न जान पड़ी और न उसका रहस्य ही ये अ
तरह समझ सके, लेकिन उस कथा को जब बार-बार सुना
समझा भी, तब इनके मन में रामचन्द्र के चरणों में अपार
और भक्ति उत्पन्न हुई और तभी से इन्होंने अपना सव
स्वामी रामचन्द्र को सौंप दिया।

विवाह और वैराग्य

इनका विवाह कब हुआ और कहाँ हुआ, इसका भी
ठीक नहीं है। किन्तु ऐसा प्रसिद्ध है कि इनकी स्त्री का
रत्नावली था और उस पर ये बहुत आसक्त थे। क्षण भ
उसके बिना रहना इन्हें असह्य हो जाता था। एक बा

इनसे बिना कहे ही अपने पिता के घर चली गई। इन्हें जब मालूम हुआ तब बड़े विह्वल हो गये और स्थिर न रह सकने के कारण उसके पीछे-पीछे ही ससुराल पहुँचे। तुलसीदासजी के इस आचरण से उनकी पत्नी को बहुत शर्म लगी और उसने इन्हें फटकार दिया। कहा—

लाज न लागत आपु कौं, दौरे आयेहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होत न तौ भवभीति॥

पत्नी की इस बात से इनके हृदय पर बड़ी चोट लगी। उल्टे पाँवों ये वहाँ से लौट कर काशी चले गये और विरक्त हो गये। उस समय से रामचन्द्र के चरणों में इनका ऐसा दृढ़ अनुराग हुआ कि उसके पीछे ये सब कुछ भूल गए और फिर कभी पत्नी का नाम नहीं लिया।

विरक्त होने के बाद गोस्वामीजी प्रायः अयोध्या और काशी में रहा करते थे और समय-समय पर मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट आदि स्थानों में घूमा करते थे। इस प्रकार घूमते हुए, विरक्त होने के बाद, दो बार पत्नी से इनकी मुलाक़ात हुई थी। घर छोड़ने के बाद, एक बार इनकी स्त्री ने एक दोहा लिख कर इनके पास भेजा था—

कटि की खीनी कनक-सी, रहति सखिन सँग सोइ।
मोहि फटे की डर नहीं, अनत कटे डर होइ॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने भी एक दोहा लिखकर
दिया—

> कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा सिर केस।
> हम तो चाखा प्रेमरस, पत्नी के उपदेस॥

कहा जाता है कि बहुत समय के बाद, वृद्धावस्था में, चि
कूट से लौटते समय, तुलसीदास एक बार अपनी ससुराल
ठहरे। उस समय इनकी पत्नी ने इन्हें पहिचाना नहीं और वि
जाने ही, अतिथि समझ कर, इनका सत्कार करने लगी। कि
कुछ समय के बाद, बात-चीत करने पर उसने अपने पति
पहिचाना। इस बात को उसने गोस्वामीजी पर प्रकट न
दिया और इनका चरण धोना चाहा। इन्होंने ऐसा न क
दिया। उसने पूजा के लिए आवश्यक सामग्री ला देने
आज्ञा चाही, पर गोस्वामीजी ने कहा कि सब मेरे झोले में
पत्नी ने मन ही मन सोचा कि मैं भी इनके साथ रह कर
भजन करती तो पति-सेवा के साथ ही जन्म भी सुधर
रात भर उसने इस बात को बहुत सोचा-विचारा और स
गोस्वामीजी को अपना परिचय देकर साथ चलने की आ
चाही, लेकिन इन्होंने इन्कार कर दिया। तब पत्नी ने कह

> खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
> कै खरिया मोहि मेलि कै, अचल करहु अनुराग॥

पत्नी की यह बातें सुन कर गोस्वामीजी ने झोला उ

कर फेंक दिया और फिर कभी किसी साज-सामान को साथ नहीं रखा ।

कुछ लोग गोस्वामीजी का विवाह होना ही नहीं मानते । इस के लिए वे कई प्रमाण देते हैं, जिनमें एक-दो तो विचारणीय भी हैं ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तुलसीदासजी बचपन में ही माता-पिता के द्वारा त्याग दिये गये थे और इनके गुरु नरहरिदास ने इनका लालन-पालन किया तथा बड़े होने पर ये उन्हीं के साथ-साथ घूमते रहे । यदि यह बात सच है तो फिर इनका विवाह कब हुआ और ये घर-गृहस्थी लेकर कहाँ बैठे ? इसके सिवा, इनके गुरु के नाम का भी कुछ ठीक पता नहीं है । अनेक ग्रन्थों में कहीं भी स्पष्ट रूप से इन्होंने गुरु का नाम नहीं लिखा । केवल रामचरित-मानस के प्रारम्भिक मङ्गलाचरण के एक शब्द पर यह कल्पना का महल खड़ा किया जाता है कि नरहरिदास इनके गुरु का नाम था । सोरठा यों है—

बन्दउँ गुरुपद-कञ्ज, कृपासिन्धु नररूप हरि ।
महामोह तम पुञ्ज, जासु वचन रविकर-निकर ॥

इसी नररूप हरि पर गोस्वामीजी के गुरु महाराज के नाम का अटकल लगाया जाता है । किन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि यह कोरा अटकल ही अटकल है या उसमें कुछ सच्चाई भी है । जो कुछ भी हो, घटना क्रम पर ख़याल रखते हुए,

दोनों बातें ठीक और सङ्गत नहीं जान पड़तीं। या तो तुल
दासजी का माता-पिता के द्वारा बचपन में त्याग नहीं हुआ
ब्याह-शादी होने के बाद, स्त्री के उपदेश से इन्हें वैराग्य
गया, अथवा यदि इस बात को सच्ची मानें तो ब्याह-अ
की बातें गोरखधन्धा हैं। बचपन से ही साधु की सङ्ग
रहने और नाना तीर्थों में घूमते रहने के कारण स्वभावत
मन का गठन उसी के अनुकूल होगा। यहाँ स्त्री के
गोस्वामीजी को लज्जित करने और वैराग्य होने की
विशेष उपयोगिता ही नहीं रह जाती।

एक बात और है। विनय-पत्रिका में एक स्थान पर लि
है—"ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।" कुछ लोग
पंक्ति से भी उनके अविवाहित होने का अनुमान करते
लेकिन इस अनुमान में कुछ अधिक तथ्य नहीं जान पड़
इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि न मुझे ब्याह-बरेखी करनी है
न जाति-पाँति की ही ज़रूरत है। इससे गोस्वामीजी
अविवाहित होने का अनुमान करना कुछ ठीक नहीं जँचता

यात्राएँ

माता-पिता के द्वारा त्याग और ब्याह आदि की
चाहे जो कुछ भी हों, इसमें सन्देह नहीं कि वैराग्य हो
बाद गोस्वामीजी कुछ दिनों तक कहीं एक स्थान पर ज

नहीं रहे, बल्कि—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—नाना स्थानों और तीर्थों में भ्रमण करते रहे।

इसी भ्रमण के सिलसिले में एक बार गोस्वामीजी बलिया ज़िला के भृगुआश्रम होते हुए ज़िला आरा (शाहाबाद) के अन्तर्गत ब्रह्मपुर नामक गाँव में आये। इस गाँव में भगवान शङ्कर का एक विशाल मन्दिर है और प्रतिवर्ष शिवरात्रि के अवसर पर वहाँ बड़ा मेला लगता है। वहाँ ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव का दर्शन करके गोस्वामीजी काँट नाम के गाँव में गये। काँट के निवासी बड़े दुर्जन और बुरे स्वभाव वाले थे। गोस्वामीजी को वहाँ कुछ भोजन न मिल सका। वहाँ के लोगों के व्यवहार से खिन्न होकर, गाँव छोड़ कर ये आगे बढ़े। आगे चलने पर उसी गाँव के साँवरू अहीर का बेटा मँगरू अहीर इन्हें मिला। वह ईश्वर और ब्राह्मण का बड़ा भक्त था, तथा उसने गाँव के बाहर एक गोशाला बना रखी थी। वह वहाँ ब्राह्मण-साधुओं का सत्कार करता और उन्हें ठहराता था। उसने गोस्वामीजी को भी बड़े आदर और श्रद्धा के साथ बुलाया और दूध पीने के लिए दिया। गोसाईंजी उसके सत्कार तथा भक्ति से प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा। उसने कहा—महाराज, आप प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिए कि भगवान के चरणों में मेरी भक्ति बढ़े और मेरे वंश की वृद्धि हो। गोसाईंजी ने कहा—यदि तुम लोग चोरी न करोगे और सत्य बोलोगे तो ऐसा ही होगा। कहते हैं गोसाईं-

जी का यह वर सफल हुआ और उसके वंश-वाले अब
चोरी नहीं करते और सच्चे तथा ईमानदार होते हैं।
साँवरू-मगरू की कथा अहीर लोगों के लोरिक गीतों में
मिलती है।

वहाँ से आगे बढ़ने पर गोसाईं जी बेलापतौत नामक गाँव
आये। यह स्थान काँट से एक कोस दक्खिन की ओर है।
गोविन्द मिश्र और रघुनाथसिंह नाम के दो सज्जन व्यक्ति
से इनकी भेंट हुई। ये दोनों ही बड़े ईश्वर-भक्त और क्रम
जाति के ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। उनके आतिथ्य-सत्कार
गोसाईं जी बहुत प्रसन्न हुए और उस गाँव का नाम बदल
रघुनाथपुर रख दिया। इसी गाँव में अब इसी नाम का रेल
स्टेशन भी है जो बक्सर से पाँच-छः स्टेशन आगे है। रघुना
पुर में गोसाईं जी का चौरा अभी तक मशहूर है। रघुनाथ
से प्रायः एक मील दक्खिन की ओर कैथी नाम का एक
है। गोसाईं जी जब वहाँ गये तो उनका बड़ा आदर हुआ
वहाँ के जोरावरसिंह गोसाईं जी के शिष्य हुए।

निवास

सबसे पहले गोसाईं जी ने अयोध्या में निवास करने
निश्चय किया था और कुछ दिनों तक वहाँ रहे भी थे। इन
कविताओं से ऐसा मालम पड़ता है कि इसके बाद ये कुछ दि
तक चित्रकूट में भी रहे थे, किन्तु इन दोनों स्थानों की ओ

काशी में अधिक रहे और काशी में ही इन्हें गङ्गा-लाभ भी हुआ।

काशी में भी गोसाईंजी किसी एक स्थान पर नहीं रहे। निम्नलिखित स्थानों में उनका रहना बतलाया जाता है।

उनका पहला स्थान असी पर है। असी का तुलसी घाट अब भी मशहूर है। इस घाट पर उन्होंने हनुमानजी की एक मूर्ति स्थापित की और उनके मन्दिर के आगे बीसा यन्त्र लिखा। यह यन्त्र अब पढ़ा नहीं जाता। यहाँ पर गोसाईंजी की गुफ़ा भी है। काशीवास में ये अधिकतर यहीं रहे थे और इन का शरीरान्त भी यहीं हुआ था।

गोपाल मन्दिर में मुकुन्दराय के बाग़ के दक्खिन-पश्चिम एक कोठरी तुलसीदासजी की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। आजकल यह कोठरी हमेशा बन्द रहती है। दर्शनार्थी यात्री एक खिड़की से झाँक कर इसका दर्शन करते हैं। यह कोठरी केवल श्रावण शुक्ल सप्तमी को खोली जाती है और उस दिन पूजा आदि होती है। कहा जाता है कि यहाँ बैठ कर तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका का बहुत सा अंश लिखा है। यह स्थान बिन्दुमाधव और पञ्चगङ्गा के समीप है।

अपने प्रसिद्ध मित्र गङ्गाराम ज्योतिषी के घर प्रह्लाद घाट पर भी गोसाईंजी कुछ समय तक रहे थे। कहते हैं चोरों वाली घटना इसी स्थान पर हुई थी।

परिचय

गोसाईंजी का काशी के एक सम्पन्न ज़मींनदार टोड
बहुत परिचय था। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह
बादशाह अकबर के मन्त्री टोडरमल्ल थे, लेकिन यह ख़
बिलकुल ग़लत है। राजा टोडरमल्ल का काशी में कोई चिह्
मिलता। इससे यही निश्चय होता है कि ये ज़मींदार
दूसरे ही व्यक्ति थे।

गोसाईंजी से इनका बड़ा स्नेह था। इनकी मृत्यु के
इनके दो पुत्रों में ज़मीन-जायदाद के सम्बन्ध में कुछ लड़ा
गई। तुलसीदासजी उस लड़ाई के पञ्च बने और उन्होंने
फ़ैसला दिया, वह आज भी काशिराज के यहाँ सुरक्षित है

अकबरी-दरबार नवरत्नों में से एक, और अकबर के
मन्त्री, अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना से भी गोसाईंजी का बड़ा
भाव था। एक बार एक ग़रीब ब्राह्मण द्रव्य के अभा
अपनी कन्या का विवाह करने में असमर्थ होकर तुलसीदा
के पास आया। गोसाईंजी ने उसे ख़ानख़ाना के पास
दिया और एक चिट पर यह आधा दोहा लिख दिया।

सुरतिय, नरतिय, नागतिय अस चाहत सब कोय।

ख़ानख़ाना ने उस ब्राह्मण को बहुत धन देकर विदा
और उसी चिट पर दोहे को पूरा करके गोसाईंजी के
भेज दिया। उनका लिखा आधा दोहा इस प्रकार था—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

आमेर के महाराजा मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह तो प्रायः गोसाईंजी के पास आया-जाया करते थे। एकबार बातों ही बातों में किसी ने गोसाईंजी से पूछा—महाराज, पहले तो आपके पास कोई नहीं आता-जाता था, अब बहुत बड़े-बड़े लोग आने लगे हैं ?

तुलसीदासजी ने उत्तर दिया—

लहै न फूटी कौड़ि हूँ, को चाहै कोइ काज।
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीब-नेवाज ॥
घर-घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ये अब राम सहाय ॥

मीराबाई की भगवद्भक्ति प्रसिद्ध है। एक बार गोसाईंजी से इनका भी परिचय हुआ था। ये मेवाड़ के राजकुमार भोजराज की पत्नी थीं। राणा को इनका साधु-सन्तों के साथ रहना पसन्द नहीं था, क्योंकि उससे लोगों में हँसी होती थी। उन्होंने मीराबाई को बहुत समझाया-बुझाया, पर मीरा ने एक न सुनी। उसके बाद मीराबाई की हत्या करने के अनेक प्रयत्न किये गये, पर किसी तरह वे सभी प्रयत्न निष्फल हो गये। अन्त में कुटम्ब वालों का तिरस्कार और उपद्रव सहते-सहते मीराबाई अधीर हो गईं। उन्होंने तुलसीदासजी की बहुत ख्याति सुनी थी, इसीसे इन्हें पत्र लिखा और पूछा कि ऐसे समय मुझे क्या करना चाहिए ?

मीराबाई का पत्र इस प्रकार था—

स्वस्ति श्रीतुलसी गुण दूषणहरण गुसाईं ।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहुँ कष्ट समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधु सङ्ग अस भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥
बालपने तें मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई ।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात-पिता के सम हो हरिभक्तन सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिए समुझाई ॥

मीराबाई के इस पत्र का गोसाईंजी ने जो उत्तर दि
वह इस प्रकार था—

जिनके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये तिन्हैं कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं
रघुपति विमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृति डर
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
गुरु बलि तज्यो, कन्त ब्रज बनितन, भे सब मङ्गलकारी
नातो नेह राम को मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कौन आँखि जौं फूटे बहुतै कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रान तें प्यारो ।
जातें होइ सनेह राम सौं सोई मतो हमारो ॥

तुलसीदासजी का उत्तर पाकर मीराबाई को बहुत

ुआ और उनकी आज्ञा के अनुसार वे घर छोड़ कर तीर्थाटन
ो चली गईं।

सुप्रसिद्ध भक्तमाल के रचयिता नाभाजी एक बार गोसा-
ंजी से मिलने के लिए काशी आये। जिस समय नाभाजी
ोसाईंजी के स्थान पर आये, ये ध्यानमें मग्न थे। नाभाजी को
हरने की फुरसत न था, वे उसीदिन वृन्दावन चले गये। पीछे
ुलसीदासजी को जब यह ख़बर मिली तो इन्हें बड़ा पछतावा
ुआ और ये नाभाजी से मिलने के लिए वृन्दावन चले गये।
जस समय ये नाभाजी के यहाँ पहुँचे, उनके यहाँ भण्डारा हो
हा था। नाभाजी ने इनका कुछ आदर-सत्कार न किया और न
ण्डारा में ही सम्मिलित होने को कहा, लेकिन ये बिना कहे ही
ण्डारा में सम्मिलित हुए। जिस समय भोजन परसा जा रहा
ा, खीर परसने के लिए कोई बर्तन न मिल रहा था। उसी
मय गोसाईंजी ने एक साधु का जूता लेकर कहा कि खीर
रसने के लिए तो सबसे उत्तम पात्र यही है। इनकी यह बात
ुन कर नाभाजी गद्गद हो गये और कहने लगे कि आज मेरे
क्तमाल का सुमेरु मुझे मिल गया।

जब नाभाजी गोसाईंजी से मिले बिना ही काशी से लौट
ाये थे, तो आकर उन्होंने भक्तमाल में उनके सम्बन्ध में यह
य-खण्ड लिखा था—'कलि कुटिल जीव तुलसी भये वाल्मीकि
वतार धरि।' लेकिन इस घटना के बाद उन्होंने उसे बदल

कर इस तरह कर दिया—'कलि-कुटिल जीव निस्तार
वालमीकि तुलसी भये।'

अलौकिक घटनाएँ

यह हमारे ही देश की नहीं, किन्तु सारे आस्तिक-
की रीति है कि वहाँ ईश्वर अथवा ईश्वर-भक्तों के सम्ब
अनेक तरह की अलौकिक घटनाओं का प्रचार हो जात
इन घटनाओं में सत्य का अंश कितना है, और झूठ का कि
इसका परिच्छेद करना आसान नहीं रह जाता। इसमें
नहीं कि इस तरह के महान् पुरुष अलौकिक होते हैं और
जीवन की बहुत सी घटनाएँ असाधारण होती हैं, लेकि
के साथ यह भी सच है कि ये कथाएँ हमारे सामने
रञ्जित रूप में आती हैं। परिणाम यह होता है कि अने
हमें इनकी सच्चाई में ही सन्देह होने लगता है। राम,
वामन, वाराह आदि अवतारों के सम्बन्ध में हमारे यहाँ
आख्यानों और अलौकिक घटनाओं का संग्रह है, वह तो
लेकिन पाश्चात्य देशों में—ईसा, मुहम्मद आदि के
में—भी इस तरह की कहानियों का नितान्त अभाव न
गोसाईंजी रामचन्द्रजी के भक्त थे। इनकी भक्ति मश
अतः यदि इनके सम्बन्ध में भी इस तरह की बहुत सी
दन्तियाँ प्रचलित हो गई हों तो इसमें कोई आश्चर्य न
हम उनमें से कतिपय का उल्लेख यहाँ करते हैं—उनकी

परीक्षा करना हमारा काम नहीं है। हम तो यही समझते कि उन कहानियों से पाठकों का न केवल मनोरञ्जन ही गा, किन्तु वे उनसे कुछ सीख भी सकेंगे।

कहते हैं कि गोसाईंजी शौच के लिए नित्य गङ्गा के उस र जाया करते थे। रास्ते में एक आम का पेड़ मिलता था। टते समय लोटे का बचा हुआ जल वे उसी पेड़ की जड़ में ल दिया करते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहा करता था। त-रोज़ जल पाकर वह तृप्त हुआ। एक दिन उसने गोसाईंजी कहा—तुमने मुझे तृप्त किया है। मैं भी तुम्हारा कोई त करना चाहता हूँ। गोसाईंजी बोले—मुझे रामचन्द्र के न की बड़ी लालसा है। इससे बढ़ कर दूसरा मेरा हित ीं। प्रेत ने कहा—इतनी तो मेरी सामर्थ्य नहीं है, पर मैं हें उपाय बतला दूँगा। अमुक मन्दिर में प्रतिदिन रामायण कथा होती है, वहाँ एक बड़ा घिनौना कोढ़ी कथा सुनने लिए आया करता है। वह हनुमानजी हैं। तुम उन्हीं का पकड़ कर हठ करो तो वे दर्शन करा दे सकेंगे। ाईंजी ने यही किया और मन्दिर में जा पहुँचे। हनुमानजी पहिचान कर उनके पैर पकड़ लिये। हनुमानजी ने ने का बहुत उपाय किया, पर गोसाईंजी टस-से-मस न । तब हनुमानजी ने कहा कि चित्रकूट जाओ, वहीं दर्शन । हनुमानजी की आज्ञा पाकर गोसाईंजी चित्रकूट आये। दिन वे वन में घूम रहे थे कि श्याम-गौर शरीर दो राज

कुमार एक हरिन के पीछे दौड़ते हुए दीख पड़े । गोस
उनको देख कर भाव-विभोर हो गये, लेकिन पहिचान
कि यही राम-लक्ष्मण हैं । इसी समय हनुमानजी प्रक
और पूछा—कुछ देखा ? तब गोसाईंजी को ध्यान आय
वे बहुत पछताने लगे ।

यह किम्वदन्ती एक दूसरे रूप में भी सुनी जाती है
हैं कि एक बार चित्रकूट में गोसाईंजी ने बस्ती के बाह
लीला होती हुई देखी । लङ्का-विजय के पश्चात् जा
साथ राम-लक्ष्मण अयोध्या लौट रहे थे । रामलीला दे
लौटे तो रास्ते में ब्राह्मण के वेश में हनुमानजी मिले
लगे—कहाँ से आ रहे हो ? गोसाईंजी बोले—रामलील
कर । यहाँ बड़ी अच्छी रामलीला होती है । ब्राह्मण ने
पागल हुए हो ! आजकल कहीं राम-लीला होती है ? गो
नाराज़ हुए— चलो तुम्हें भी दिखा दें, हम तो अभी
रहे हैं । लेकिन, वहाँ जाकर देखा तो कहीं कुछ नहीं ।
हनुमानजी की बात याद आई और अपने अज्ञान पर
लगे ।

एकबार कुछ चोर गोसाईंजी के यहाँ चोरी करने
आकर उन्होंने देखा, एक सुन्दर, साँवला बालक हाथ
बाण लिए कुटिया की रखवाली कर रहा है । देख क
लौट गये । दूसरे दिन वे फिर आये और फिर भी उन्हें
धनुषधारी बालक को पहरा देते देखा । तब तो उ

श्चर्य हुआ और दूसरे दिन उन्होंने जाकर गोसाईं जी से
छा कि महाराज, रात में जो साँवला-सा सुन्दर धनुर्धारी
लक आप की कुटिया पर पहरा दिया करता है, वह कौन है ?
साईं जी समझ गये कि मेरे कारण ही रामचन्द्रजी को इतना
ष्ट उठाना पड़ रहा है ; अतः उनके पास जो कुछ था, वह
ब उन्होंने भिखारियों को बाँट दिया । चोरों पर इस घटना
 बड़ा प्रभाव पड़ा और वे उसी दिन से गोसाईं जी के चेले
 गये ।

चोरों की एक और घटना सुनी जाती है । एक बार कहीं
 घर लौटते हुए गोसाईं जी को रात हो गई । रात अँधेरी
 । रास्ते में चोर मिले । गोसाईं जी ने हनुमानजी का ध्यान
या और यह दोहा पढ़ा—

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर ।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरी-किसोर ॥

बस-हनुमानजी प्रकट हुए और चोर नौ-दो-ग्यारह हो गये ।
एक ब्राह्मण मर गया था । उसका शव श्मशान ले जाया
 रहा था । रास्ते में गोसाईं जी मिले । इन्हें देख कर मृत
क्ति की पत्नी ने प्रणाम किया । इनके मुँह से आशीर्वाद
कल गया—सौभाग्यवती होओ । लोगों ने कहा—महाराज !
सका पति तो मर गया । उन्होंने कहा—कोई चिन्ता नहीं,
तक मैं न आ जाऊँ मुर्दा न जलाना । ऐसा ही हुआ ।

गोसाईंजी गंगा-स्नान करके भगवान की स्तुति करने
और उनकी प्रार्थना के प्रभाव से ब्राह्मण जी उठा।

मुर्दा जिलाने की बात जब तत्कालीन बादशाह जहाँगी
सुनी, तो उसने गोसाईंजी को बुला भेजा और कहा-
करामात दिखलाइये। गोसाईंजी ने कहा—राम-नाम के
मैं और कोई करामात नहीं जानता। तब बादशाह ने इन्हें
करवा लिया और कहा कि बिना करामात दिखाए न
पाओगे। क़ैद में जाकर तुलसीदासजी को बड़ा कष्ट
लगा—इनके भगवद्भजन में बाधा पड़ने लगी, तब दुः
कर निम्न-लिखित छन्दों से इन्होंने हनुमानजी स्तुति की-

कानन भूधर बारि बयारि दया विष ज्वाल महा अरि घेरे।
सङ्कट कोटि परो तुलसी तहँ मात-पिता सुत बन्धुन नेरे॥
राखहिं राम कृपा करिके हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥

तोहि न ऐसी बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब काहु न राम से तुमसे न बसीले॥
तेरे देखत सिंह के सुत मेंढुक लीले।
जानत हूँ कलि तेरेऊ मनो गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकन्ध के भये बन्धन ढीले।
सो बल गयो कि भये अब कछु गर्व गहीले॥
सेवक को परदा फटै तूँ समरथ सीले।
अधिक आपु तें आपु तें सनमान सहीले॥

साँसति तुलसीदास की देखि सुजस तुहीं ले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले ॥

समरथ-सुअन समीर के रघुवीर पियारे ।
मो पर कीबी तोहि जो करि लेहि पियारे ॥

तेरी महिमा ते चलै चिंचिनी चिंयारे ।
अँधियारे मेरी बार को त्रिभुवन उँजियारे ॥

जेहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे ।
केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे ॥

खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे ।
जो तोसो होतो फिरो मेरे हेत हिया रे ॥

तो क्यों बदन दिखावतो कहि वचन रिया रे ।
तेरे बल बलि आज लौं जग जानि जिया रे ॥

तो सों ज्ञान-निधान को सर्वज्ञ बिया रे ।
हौं समुझत साईं द्रोह की गति छार छिया रे ॥

तेरे स्वामी राम सों स्वामिनी सिया रे ।
तहँ तुलसी कहै कौन को ताको तकिया रे ॥

गोसाईंजी की इस प्रार्थना से हनुमानजी प्रसन्न हुए और उन्होंने वानरों की बिशाल सेना भेज दी । सेना आकर बादशाह के क़िले को तहस-नहस करने लगी । उनके उपद्रव से लोग घबरा गये । तब बादशाह को होश आया और वह आकर तुलसीदासजी से माफ़ी माँगने और कहने लगा—मेरी

रक्षा कीजिए। तब गोसाईं जी ने फिर हनुमान जी की प्रा
की—

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न विचारी॥
लोक-रीति देखी-सुनी व्याकुल नर-नारी।
अति बरषे अनबरषेहु देहिं दैवहिं गारी॥
ना कहि आये नाथ सों भई साँसति भारी।
करि आए कीवी छमा निज ओर निहारी॥
समय साँकरें सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब विधि दाया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहेबहिं सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निहारी॥
कटु कहिये गाढ़े पड़े सुनि समुझि गुसाईं।
करहिं अनभलेहु को भलो आपनी भलाई॥
समरथ सभी जो पाइये सुनि पीर पराई।
ताहि तक्यो सब ज्यों नदी वारिधि न बोलाई।
अपने अपने को भलो चहै सब लोग लोगाई॥
भावै जो जेहि भजै सो सुभ असुभ सगाई॥
बाँह बोल दै थापिए जेहि निज बरियाई।
बिनु सेवा सों पालिए सेवक की नाईं।
चूक चपलता मेटई तूँ बड़ी बड़ाई।
हौं तौ आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई॥

बन्दि छोर बिरदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरिये निकाई॥

मङ्गलमूरति मारुत नन्दन। सकल अमङ्गल-मूल-निकन्दन॥
पवन-तनय सन्तन हितकारी। हृदय विराजत अवध विहारी॥
मात-पिता-गुरु-गनपति-सारद। सिवा समेत सम्भू सुक नारद॥
चरन बन्दि बिनवौं सब साहू। देहु रामपद-भक्ति निबाहू॥
बन्दउँ राम-लखन वैदेही। जो तुलसी के परम सनेही॥

गोसाईंजी के प्रार्थना करने पर बानरों का उपद्रव तो कम हो गया, लेकिन गोसाईंजी ने बादशाह से कहा कि अब तो उसमें हनुमानजी का वास हो गया; अपने लिए तुम दूसरा क़िला तैयार करो। बादशाह ने ऐसा ही किया और नयी दिल्ली तथा क़िला बनवाकर पुराना क़िला छोड़ दिया।

इस घटना में ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ा जाय तो शायद बहुत अधिक न मिलेगा, लेकिन भक्ति और विश्वास का इससे ज़बर्दस्त उदाहरण और नहीं मिल सकता। नई दिल्ली (शाहजहाँबाद) और वहाँ का क़िला जहाँगीर के बेटे शाहजहाँ ने बनवाया था। शाहजहाँ संवत् १६८५ में गद्दी पर बैठा था और उसके गद्दीपर बैठने के पाँच साल पहले अर्थात् संवत् १६८० में गोसाईंजी की मृत्यु हो चुकी थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि नयी दिल्ली और क़िला गोसाईंजी के जीवन-काल में नहीं बनवाया गया। सम्भव है, नयी दिल्ली के बसने पर जब शाहजहाँ ने पुराना क़िला छोड़ दिया हो और वहाँ बन्दर आदि रहने लगे हों, तो

यह किम्वदन्ती प्रचलित कर दी गई हो। कुछ लोगों का
है कि बादशाह जहाँगीर ने ही अपने बेटे शाहजहाँ के न
नयी दिल्ली (शाहजहाँबाद) बसाई थी, लेकिन यह बात
है। जहाँगीर ने नयी दिल्ली का निर्माण नहीं किया।

जहाँगीर की क़ैद से छूटकर गोसाईंजी वृन्दावन
एक दिन वे किसी मन्दिर में गये। वह मन्दिर श्रीकृष्
था। श्रीकृष्णजी की मूर्ति देख कर गोसाईंजी ने कहा—

का बरनउँ छबि आज की, भले बिराजेउ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लेउ हाथ॥

कहते हैं, यह दोहा सुनकर कृष्ण की मूर्ति राम-मू
रूप में बदल गई और तब गोसाईंजी ने उसे प्रणाम कि

बिखरी बातें

रामायण लिख लेने के बाद, एक बार गोसाईंजी ग
स्नान कर रहे थे। वहीं एक पण्डितजी भी थे। उन्हें
विद्वत्ता का बड़ा घमण्ड था। उन्होंने गोसाईंजी से क
आप तो संस्कृत के पण्डित हैं, आपने अपनी पुस्तक
भाषा में क्यों लिखी ? गोसाईंजी बोले—मेरी पुस्त
भाषा गँवारी ज़रूर है, लेकिन आपके संस्कृत के ना
वर्णन से अच्छी ही है। पण्डितजी ने कहा—कैसे ? गोस
बोले—

मनि भाजन बिष पारई, पूरन अमी निहार।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचार॥

घनश्याम शुक्ल नाम के एक पण्डित संस्कृत के अच्छे कवि
, लेकिन हिन्दी में कविता लिखना ज़रा उन्हें ज़्यादा पसन्द
ा। उन्होंने दो-एक धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद भी हिन्दी में
कया। इस पर एक दूसरे पण्डित ने उनसे कहा कि इन ग्रन्थों
ो संस्कृत के सिवा किसी दूसरी भाषा में लिखने से ईश्वर
प्रसन्न होते हैं। आगे से आप न लिखा कीजिए। घन-
ामजी ने इस बारे में तुलसीदासजी से राय ली। उन्होंने
हा—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहियत साँच।
काम जो आवई कामरी, का लै करै कुमाच॥

एक बार गोसाईंजी समाधि में थे। दरवाज़े पर कुछ
क़ीर आकर 'अलख़, अलख़' पुकारने लगे। समाधि भंग होने
र उन्होंने फ़क़ीरों से कहा—

हम लखि लखहि हमार लखि, हम हमार के बीचु।
तुलसी अलखहि का लखै, राम नाम जपु नीचु॥

जब गोसाईंजी ने ब्राह्मण का मुर्दा जिला दिया था, तब
नित्य उनके दर्शन को बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी होती थी। दिन
एकबार निकल कर वे उपस्थित लोगों को दर्शन दिया करते
। उस समय तीन लड़के उनके दर्शन को नियम से आया

करते थे। एक बार किसी कारण वश वे न आ सके। उ
दिन गोसाईंजी ने किसी को दर्शन न दिया। यह बात लो
को बहुत बुरी लगी। दूसरे दिन फिर सब लोग आये। वे ती
लड़के भी नित्य ही की तरह आये; लेकिन उस दिन भी तुलस
दासजी ने उनकी परीक्षा लेने की इच्छा से किसी को दर्शन
दिया। लड़कों से वियोग सहा न गया। वे तड़प कर मर ग
तब गोसाईंजी ने अपना चरणामृत पिलाकर फिर से उ
जीवित कर दिया।

एक तान्त्रिक दण्डी की स्त्री को कोई वैरागी भगा ले गया
दण्डी को यक्षिणी सिद्ध थी। उसने उसीके बल से बादश
को पकड़ मँगवाया और उसके द्वारा यह हुक्म ज़ारी कर
दिया कि सारे वैरागियों की कण्ठी-माला छीन ली जाय
बादशाह के सिपाही जब गोसाईंजी के पास पहुँचे तो उ
भयानक काल का रूप दीख पड़ा और वे घबरा कर भाग गये
गोसाईंजी के प्रभाव से सब लोगों की कण्ठी-माला फिर उ
मिल गई।

जिस समय ये चित्रकूट जा रहे थे, रास्ते में एक राजा
कन्या को चरणामृत पिलाकर उन्होंने उसे पुरुष बना दिया
इस घटना के प्रमाण में ये पद उद्धृत किये जा सकते हैं—

कबहुँक दरसन सन्त के पारस मनी अतीत।
नारी पलट सो नर भयो लेत प्रसादी सीत॥

तुलसी रघुबर सेवतहिँ मिटिगो कालो काल।
नारी पलट सो नर भयो ऐसे दीन दयाल॥

गोसाईं जी जिन दिनों भ्रमण कर रहे थे, अवध होते हुए वे नैमिषारण्य आये थे। वहाँ सूकर क्षेत्र का दर्शन किया और कुछ दिनों तक पसका नामक गाँव में रहे। वहीं सिवार नाम के गाँव में सीता-कूप है। यह स्थान सीताजी का है। कुछ दिन लक्ष्मणपुर में भी रहे और वहाँ के एक निरक्षर जाट को अच्छा कवि बना दिया। वहाँ से और कई स्थानों में होते हुए ये मलीहाबाद में अपने एक भाट भक्त के यहाँ जाकर ठहरे। भाट को उन्होंने अपनी लिखी रामायण की एक प्रति भी दी। कहते हैं, रामायण की वह प्रति उसके वंशधरों के पास अभी भी वर्तमान है, लेकिन वे लोग उसे किसी को देते नहीं हैं। वहाँ से प्रभाती, वाल्मीकि आश्रम तथा अन्य कई स्थानों में होते हुए ये अनन्यमाधव से मिले। अनन्यमाधव बड़े भारी कवि और प्रसिद्ध भक्त थे। गोसाईं जी ने उन्हीं के यहाँ—"मैं हरि पतित पावन सुने" वाला पद बनाया। उत्तर में अनन्य-माधव ने यह पद बनाकर उन्हें सुनाया—

तबतें कहाँ पतित नर रह्यो।
जब तें गुरु उपदेश दीन्हों नाम नौका गह्यो॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कञ्चन लह्यो।
कस न कसि कसि लेहु स्वामी अजन चाहन चह्यो॥

उभरि आयो बिरह बानी मोह मँहगे कह्यो।
खीर नीर तें भयो न्यारो नरक तें निर्बह्यो॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि सरवर मह्यो।
अनन्य माधव दास तुलसी भव जलधि निर्बह्यो॥

तुलसीदासजी कुछ दिनों तक वहाँ रहकर, और कई स्थ
में होते हुए फिर अवध लौट गये।

मिसिरिष के समीप जैरामपुर नामक एक गाँव में उन्ह
एक सूखी डाल गाड़ दी, जो हरी हो गई। उसी वृक्ष का न
उन्होंने वंशीवट रक्खा और आज्ञा दी कि प्रतिवर्ष य
श्रीराम-विवाहोत्सव के अवसर पर रामलीला हुआ करे।
से अबतक प्रतिवर्ष अगहन सुदी ५ को वहाँ बड़ा उत्स
होता है।

एक बार उनसे मिलने के लिए प्रसिद्ध गङ्ग कवि भी का
आये थे।

निर्वाण

गोसाईंजी की मृत्यु के लिए एक दोहा मशहूर है—

संवत सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

उस समय भारतवर्ष में जहाँगीर राज्य कर रहा था
जहाँगीर संवत् १६६२ में गद्दी पर बैठा था और संवत् १६८४

उसकी मृत्यु हुई। उसके शासन-काल में—संवत् १६७३ में—पञ्जाब में बड़ा भयानक प्लेग फैला और वह लगातार आठ वर्षों तक बना रहा। तुजुक जहाँगीर नामक ग्रन्थ में उसकी भीषणता का बड़ा भयानक वर्णन है। उस समय आगरे में भी नित्य सैकड़ों मनुष्यों की मृत्यु होती थी। लोग घर-द्वार छोड़ कर भाग रहे थे। चारों ओर हाहाकार मच गया था। गोसाईंजी ने भी कवितावली में इस प्लेग की चर्चा की है—

"बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसा गति शङ्कर सहर की।"

इस पद से ऐसा मालूम होता है कि उस समय रुद्रबीसी लगी हुई थी। वह लगभग १६६५ से १६८५ संवत् तक का समय है।

प्लेग का यह आक्रमण काशी में भी हुआ था। गोसाईंजी ने कवित्त-रामायण में उसका भी वर्णन किया है। वह इस प्रकार है—

शङ्कर सहर नर-नारि वारिचर गर,
विकल सकल महामारी माया भई है।
उछरत, उतरात, हहरात, मरिजात,
भभरि भगात जल थल मीचु मई है॥
देव न दयाल, महिपालन कृपाल चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।

पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत
रामहू की बिगरी तुही सुधारि लई है ॥

इसके बाद इस प्लेग का वर्णन एक और छन्द में इस किया है।

एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन कों।
वेद धरम दूरि गए भूपचोर भूप भए
साधु सिद्ध मान जात बीते पाप पीन की।
दूसरे को दूसरो न धाम राम दयाधाम
रावरोई गात बल विभव विहीन को।
लागैगी पै लाज बिराजमान बिरदहिं
महाराज आजु जो न देत दाद दीन को॥

इन दो छन्दों से यह तो प्रमाणित हो जाता है कि काशी प्लेग फैला था—लेकिन आगरे में प्लेग होने के कितने दिन वहाँ हुआ, इसका वहाँ कोई निश्चय नहीं है। अनुमान जाता है आगरा में प्लेग फैलने के ४-६ वर्षों के बाद में प्लेग का आक्रमण हुआ।

ऊपर गोसाईं जी की मृत्यु के सम्बन्ध का एक दोहा किया गया है। उससे यह मालूम हो जाता है कि उनकी कब हुई। मृत्यु के सम्बन्ध में प्रायः कोई मतभेद नहीं लेकिन मृत्यु किस तरह से हुई, इसमें कुछ मतान्तर अ

। मृत्यु किसी तरह भी हुई हो, लेकिन इस में सन्देह नहीं मृत्यु के समय उन्हें बहुत कष्ट भोगना पड़ा।

मालूम पड़ता है, गोसाईं जी को प्लेग हो गया था और उसे उनकी मृत्यु हुई। कवितावली रामायण के अन्तिम भाग कुछ ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट मालूम होता कि वे पिछले दिनों प्लेग से पीड़ित हो गये थे। यहाँ कवितावली से इस प्रकार के कतिपय छन्द उद्धृत किये ते हैं—

जानिये जहान हनुमान की नेवाजो जन
अनुमानि मन बलि बोलि न बिसारिए।
सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहा चूक परी
साहेब सुभाय कवि साहेब सँभारिए॥
अपराधी जानि कीजे साँसति सहस भाँति
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजी के
बाँहपीर महाबीर बेग ही निवारिए॥
भाल की कि काल की कि रोष की त्रिदोष की है,
वेदन विषम पाप ताप छल छाँह की।
करम न फूट की कि जन्त्र मन्त्र बूट की,
पराहि जाहि पापिनी मलीन मन माँह की।
पैहहि सजाई न त कहहि बजाई बोलि,
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की।

आन हनुमान की दोहाई बलवान की,
सपथ महावीर की जो रहे पीर बाँह की
आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें,
बढ़ी है बाँह वेदन सही न कही जाति है।
औषध अनेक जन्त्र-मन्त्र टोटकादि किए,
वादि भए देवता मनाए अधिकाति है॥
करतार भरतार हरतार कर्म काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तूँ मेरो कहो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोहि पीर न पिराति है॥

इसी तरह के और भी कई छन्द हैं, जिनसे मालूम है कि पहले गोसाईंजी की बाँह में पीड़ा हुई, फिर ब गिल्टी निकल आई और उसके बाद सारे शरीर में पीड़ लगी तथा ज्वर भी आ गया। उन्होंने बहुत उपाय दवा-दर्पन किया, जादू-टोना करके हार गये और बीमार होने के बदले बढ़ती ही गई तो अन्त में निराश होकर उ यह छन्द कहा—

कहौं हनुमान सों सुजान राम राय सों,
कृपानिधान शङ्कर सु सावधान सुनिए।
हरष विषाद राग-रोष गुन-दोष-मई,
विरची विरञ्चि सब देखियत दुनिए॥
माया जीव काल के करम के सुभाउ के,
करैया राम वेद कहै ऐसी मन गुनिए।

तुम्ह तें कहा न होइ हाहा सो बुझैये मोहि,
हौंहू रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिए ॥

अनुमान किया जाता है कि बीमारी बहुत बढ़ जाने पर, वन से निराश होकर गोसाईंजी गङ्गातट पर आ गये थे। ाँ क्षेमकरी देवी का दर्शन किया। उस समय उन्होंने निम्न-खित छन्द कहा था—

कुंकुम रङ्ग सुअङ्ग जितो मुखचम्प सों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवे अवलोकत सोच विचार हरी है॥
गौरी कि गङ्ग बिहङ्गि नि वेष कि मञ्जुल मूरति मोद भरी है।
पेखु सयेम पयान समै सब सोच विमोचन क्षेमकरी है॥

इस छन्द से साफ़ मालूम पड़ता है कि जिस समय यह गया है, उस समय गोसाईंजी अपनी अन्तिम घड़ियाँ रहे थे।

इन सब बातों का तात्पर्य यही निकलता है कि संवत् ‌:० में श्रावण महीने की शुक्लपक्ष की सप्तमी को काशी के ती घाट के गङ्गातट पर तुलसीदासजी का शरीरान्त हुआ। मृत्यु प्लेग के कारण, बहुत कष्ट पा कर हुई। यद्यपि इन के लिए कोई ऐतिहासिक तथ्य हमारे पास नहीं है, न, हमारा ख़याल है, गोसाईंजी के उल्लिखित पद्य-खण्डों ढ़कर, इस बात के लिए, और किसी दूसरे प्रमाण की श्यकता नहीं है।

गोसाईं जी सावन के महीने में परलोकवासी हुए थे
बात के प्रमाण के लिए उन्हीं का एक छुन्द पेश किय
सकता है—

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों,
बासर सजल घन घटा धुकि धाई है।
बरखत बारि पीर जारिये जवास ज्यों,
सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है॥
करुणानिधान हनुमान महा बलवान,
हेरि हँसि हाँकि फूँक फौज़तें उड़ाई है।
खाये हुती तुलसी कुरोग राँड राकसिनि,
केसरी किसोर राखे वीर बरिआई है॥

इस छुन्द में वर्षा का वर्णन है। इससे यह बात
जाती है कि गोसाईं जी का शरीरान्त श्रावण मास में ही
था।

कहते हैं, उनका अन्तिम दोहा यह है—

राम नाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुँह दीजिये, अब ही तुलसी सौन॥

इस प्रकार संसार का एक बड़ा भक्त, एक महान्
एक सच्चा प्रेमी और एक आदर्श त्यागी संसार से उठ
आज तुलसीदास का स्थूल शरीर संसार में नहीं है, पर
यण के रूप में वे अपनी जो अजर-अमर कीर्ति हमें दे

ह सदा उन्हें जीवित रक्खेगी। रामायण के रूप में आज भी
लसीदास दरिद्र और ग़ुलाम भारतवर्ष के घर-घर में, मुँह-
ँह पर विराजमान हैं। तुलसीदास को मरे ३०० से भी कुछ
धिक वर्ष हो गये, लेकिन कौन कह सकता है, तुलसीदास
र गये हैं ? तुलसीदास मरे नहीं हैं, उनकी तरह के लोग
रते नहीं हैं; वे अजर हैं, अमर हैं, उनकी कीर्ति की सुवास
ाज भी दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो रही है, वह अनन्त काल
क वैसी ही होती चली जायगी। फिर तुलसीदास क्यों नहीं
र कर भी अमर हैं ?

स्वभाव और आचार-विचार

गोसाईंजी का स्वभाव बड़ा नम्र, सरल और विनीत था।
ीनता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। इनके ग्रन्थों में पद-
द पर इनके इस दैन्य का परिचय मिलता है। इनका बनाया
ुआ रामचरित-मानस भक्ति-रसका एक अपूर्व और उत्कृष्ट
ाव्य है। काव्य के सभी उत्तम लक्षणों से यह परिपूर्ण है।
स पुस्तक में साहित्य, राजनीति, समाजनीति, धर्मशास्त्र आदि
भी विषयों का गम्भीर विवेचन है। किन्तु, इतने महान् और
त्कृष्ट काव्य के प्रणेता होते हुए भी तुलसीदासजी को अभि-
ान छू नहीं गया था। रामचरित-मानस के आरम्भ में भी
न्होंने यही लिखा है कि—

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना । सकल कला सब विद्या हीन

कवित विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहौं लिखि कागद क

यह जो दीनता की भावना गोसाईंजी में थी, यह इस कि वे महान् थे—किन्तु, उनकी यह महत्ता, यह दीनता संसार का यथार्थ रूप देखने से विरत नहीं करती थी। वे सत् और असत् को उसी रूप में देखते थे, जो उनका व विक स्वरूप होता था। यद्यपि अपने ग्रन्थ के आरम्भ में उ दुष्टों की भी वन्दना की है, तथापि उनका स्वरूप नहीं हैं। वे कहते हैं—

वायस पालिय अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँ कि काग

हाँ, रामचन्द्र के सामने वे अपने से कुटिल और पतित किसी को नहीं मानते । लेकिन, जब दुष्टों का प्रसङ्ग आ तो वे यही कहते हैं—

खल परिहास कोटि हित मोरा । काक कहहिं कलकण्ठ कठोरा

गोसाईंजी को किसी व्यक्ति से द्वेष नहीं था। वे दुष के विरोधी और निन्दक थे। इसी से जहाँ तक वे विचार-ज में रहते थे, वहाँ तक तो अपनी सात्त्विक भावनाओं को से ऊँचा रूप दे देते थे, लेकिन, इसके प्रतिकूल, जब व्यावहारिक जगत् में आना पड़ता था, वे जन-समुदायकी वृत्तियों और चरित्रों की आलोचना करने को विवश जाते थे।

उन्हें सब से ज़्यादा नफ़रत दिखावट और पाखण्ड थी। दुष्टों के लिए तो वे यह कह कर अपने मन को समझा ते थे कि—

'सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥'

लेकिन, जो लोग बे-सिर-पैर की बकवास करके अपने को ाधु और ज्ञानी प्रमाणित करना चाहते थे, उन्हें देख कर ोसाईंजी के शरीर में आग लग जाती थी। उन लोगों की ातें सुनकर गोसाईंजी विशेष चिढ़ जाते और कभी-कभी तो री तरह उन्हें डाट भी देते थे। इस तरह की एक घटना का ल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। एक बार कुछ फ़कीरों ने 'अलख लख' कहकर उन्हें चिढ़ा दिया था। तब उन्होंने कहा था—

तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपु नीच।

इस पद्य-खण्ड में आये हुए नीच शब्द से ही मालूम होता कि गोसाईंजी कितना चिढ़ गये थे। संसार के आडम्बर ौर पाखण्ड ने उन्हें बहुत कुछ चिड़चिड़ा बना दिया था।

इन सारी बातों से यही ध्वनि निकलती है कि उनका दय सरल, निर्मल और निर्विकार था और वे इन भावों के कसी भी विरोधी भाव को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और सी कारण अनेक बार उत्तेजित हो कर भला-बुरा जो मुँह से ाता था, कह बैठते थे।

गोसाईंजी का सदाचार आदर्श था। जो भाव धर्म और

सदाचार को पुष्ट करनेवाले न होते थे—चाहे वे कित
ऊँचे क्यों न हों—उनके लिए उनके हृदय में स्थान न था

गोसाईंजी में अभिमान तो छू भी न गया था, ले
इससे यह न समझ लेना चाहिए कि लोभ या भय से वे
दीनता प्रकट करते थे। नहीं, ऐसा करना वे आत्म-सम
के विरुद्ध समझते थे। रामचन्द्र की शरण पाकर वे और
बात की आकांक्षा नहीं रखते थे, अतः उन्हें किसी से
या लुब्ध होने की आवश्यकता ही न रह गई थी—

किरपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मो

वे समझते थे कि ऐसे लोगों की ख़ुशामद करना या उ
गुण गाना, अपनी विद्या-बुद्धि का अपमान करना है। उ
लखा भी है—

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना

अपनी इसी समझ के अनुसार अपने बनाये हुए
ग्रन्थों में ईश्वर की प्रशंसा के अतिरिक्त, कहीं भी
मनुष्य की प्रशंसा नहीं की, हाँ, अपने परम मित्र
की मृत्यु पर, उसके सद्गुणों के कारण चार दोहे उ
ज़रूर कहे थे, लेकिन उनके अतिरिक्त उनका और कोई
मनुष्य-प्रशंसा में लिखा या कहा गया नहीं मिलता।

भारतवर्ष में उत्पन्न होना, वे गौरव की बात समझते
स्वयं भारतवर्ष में उत्पन्न होने का उन्हें बड़ा अभिमान

उन्होंने अनेक स्थलों पर इस रूप में, अपने विचारों का परिचय दिया है—

भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहिकै।
जो भजै भगवान सयान सोई, तुलसी हठ चातक ज्यों गहिकै॥

और भी—

दियो सुकुल जनम, सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पण्डित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरत खण्ड समीप सुरसरि, थल भलो, सङ्गति भली।
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहति विसफल फली॥

गोसाईंजी स्मार्त वैष्णव थे। वे किसी से द्वेष न रखते थे और केवल उपासना के लिए भगवान् रामचन्द्र को अपना इष्ट देव मानते थे। वे अपने उपास्य का रूप धर्ममय देखते थे, और दूसरों के उपास्य के प्रति उनके मन में कोई विद्वेष नहीं था। लेकिन, जो लोग पाखण्ड की—असत् की—उपासना करते थे, गोसाईंजी सदा ही उनके प्रति खड्गहस्त रहते थे। उनकी समझ के अनुसार भूत-प्रेत पूजनेवालों की वही गति है, जो किसी अधर्मी और दुराचारी की हो सकती है। वे कहते हैं—

जे परिहरि हरिहर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कै गति मोहिं देउ विधि, जो जननी मत मोर॥

लेकिन, उनका यह भाव अनुदारता के उस कट्टरपन तक नहीं पहुँच पाया था, जिसके वशीभूत हो कर लोग दूसरी

सभ्य जातियों के उपास्य का अपमान करते, या उनकी
सना-पद्धति को बुरा-भला कह देने में सङ्कोच नहीं क
गोसाईंजी का विरोध तो इस सिद्धान्त पर है कि जो जि
उपासक है, उसका आचरण भी उसी के अनुरूप रहेगा।

वे उस विश्वास को भी 'अन्ध विश्वास' मानते थे, जि
आधार श्रेष्ठ और सात्विक न होता था। वे कहते हैं—

लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाय॥

यों तो गोसाईंजी के सामाजिक और धार्मिक विचार
ऊँचे हैं, किन्तु जहाँ-तहाँ उन्होंने ऐसे विचार प्रकट कि
जो विवादास्पद हैं। उदाहरण के लिए, स्त्रियों के सम्ब
उनके विचार इतने उदार और संयत नहीं मिलते। स्त्री-जा
ही वे चिढ़े हुए से दीख पड़ते हैं। स्थान-स्थान पर कहते

'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।
,सहज अपावन नारि'.........
'जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी।'

कुछ लोगों का यह ख़याल है कि गोसाईंजी की मात
तो बचपन में ही देहान्त हो गया था, पत्नी से बहुत दिनों
साथ नहीं रहा, और वैरागी होने के कारण भली स्त्रि
मिलने-जुलने का अवसर नहीं मिला, फलतः निम्न कोटि
स्त्रियों को देख कर इनकी इतनी बुरी धारणा उनके प्रति ब
थी। बात चाहे जो कुछ भी हो, लेकिन इसमें सन्देह नह

जस देश में सीता, सावित्री जैसी स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हों, उस शा का इतना बड़ा महाकवि स्त्रियों के सम्बन्ध में इतनी बुरी ारणा रखे, यह बात वांछनीय नहीं जान पड़ती।

कुछ लोग कहते हैं कि पाश्चात्य कवियों—जैसे शेक्सपियर, ोल्डस्मिथ आदि—ने भी स्त्रियों के सम्बन्ध में इसी तरह की ातें कही हैं। शेक्सपियर साहब का कहना है—frailty ! hy name is woman. अर्थात् विश्वासघात ! तेराही ाम 'स्त्री' है। गोल्डस्मिथ ने भी कहा है—A womans eason ! It is so, because I think, it is so लेकिन, ो लोग ऐसा कहते हैं, वे भूल जाते हैं कि स्त्रीत्व के पाश्चात्य ौर पूर्वीय आदर्शों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है।

ग्रन्थ-परिचय

गोसाईंजी की लिखी हुई कुल कितनी पुस्तकें हैं, इसका ा ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सका। अब तक के विद्वानों ने ाटी-बड़ी कुल मिला कर बारह पुस्तकों के सम्बन्ध में तो ह निश्चय कर लिया है कि वे गोसाईंजी की ही हैं, लेकिन ौर भी कितने ही ग्रन्थ हैं, जिनके सम्बन्ध में यह कहा ाता है कि ये भी उन्हीं की रचनाएँ हैं। लेकिन अभी तक न बात का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सका है। जो बारह न्थ तुलसीदासजी के बताए जाते हैं, उनमें छः बड़े और छः ोटे हैं। उनके नाम क्रम से यों हैं—

(१) रामलला नहछू (२) पार्वती-मङ्गल (३) जान
मङ्गल (४) बरवै रामायण (५) वैराग्य-सन्दीपनी (
कृष्णगीतावली (७) दोहावली (८) कवितावली रामा
(६) गीतावली (१०) रामाज्ञा (११) विनय पत्रिका
(१२) रामचरित-मानस ।

इनमें से ऊपर के छः ग्रन्थ छोटे और बाक़ी छः बड़े
गोसाईंजी के सभी ग्रन्थों में रामचरित-मानस सबसे बड़ा

इसके अतिरिक्त शिवसिंह सरोज आदि ग्रन्थों के लेख
ने निम्नलिखित दस ग्रन्थों को भी गोसाईंजी का ही लि
हुआ बताया है।

(१) राम सतसई (२) सङ्कट मोचन (३) हनुमद्बा
(४) रामसलाका (५) छन्दावली (६) छप्पय रामा
(७) कड़खा रामायण (८) रोला रामायण (६) भूल
रामायण, और (१०) कुण्डलिया रामायण ।

इन पुस्तकों में से कई तो अप्राप्य हैं, मिलती ही न
और कई में कुछ-कुछ दूसरे ग्रन्थों के अंश हैं। रामसतसई
पुस्तक है। सम्भव है, तुलसीदासजी की ही पुस्तकों में से
अंश इधर-उधर के मिला कर इन पुस्तकों के दूसरे-दूसरे
रख दिये गए हों।

रामसतसई में सात सौ से कुछ अधिक दोहे हैं, जिन
प्रायः डेढ़ सौ दोहावली के हैं। रामायण के कई विशेषज्ञों ने
गोसाईंजी कृत ही माना है और एक ने तो इस पर टीका

की है; लेकिन कुछ लोगों ने तर्क-पूर्ण युक्तियों से यह बात सिद्ध कर दी है कि यह तुलसी नामक किसी कायस्थ कवि की लिखी हुई पुस्तक है। इस सतसई का रचना-काल १६४२ संवत् था। यह बात सतसई के ही एक दोहे में लिखी हुई है—

२ ४ ६ १
अहि-रसना, थन धेनु, रस, गनपति द्विज, गुरु वार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार॥

इस दोहा से स्पष्ट हो जाता है कि वैशाख शुक्ल नवमी गुरुवार को यह पुस्तक पूरी हुई थी।

विवादास्पद विषय को छोड़ कर, यहाँ क्रम से हम गोसाईं जी के ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देने की चेष्टा करेंगे।

(१) रामलला नहछू—भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में नहछू की प्रथा प्रचलित है। बारात विदा होने के पहले वर की माँ वर को गोद में लेकर बैठती है और नाइन उसके पैरों के नख पर महावर लगाती है; इसी को नहछू कहते हैं। इस पुस्तक में इसी नहछू की लीला वर्णित है। रामचन्द्र का विवाह तो अकस्मात् ही निश्चित हो गया था। अतः कुछ विद्वानों का मत है कि यह नहछू चारों भाइयों के यज्ञोपवीत के समय हुआ था। कुछ स्थानों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू होने की प्रथा है। यह छोटी-सी पुस्तक सोहर छन्द के बीस तुकों में समाप्त हुई है। इस छन्द को सोहला भी कहते हैं। इसमें

कौशल्या आदि माताओं का हास-परिहास वर्णित है । इस
प्राथमिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जे एहि नहछू गावहिं गाइ सुनावहिं हो ।
रिद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावहिं हो ॥

(२) पार्वती मङ्गल—इस ग्रन्थ में शिव-पार्वती के विव
का वर्णन है । यह पुस्तक भी सोहर छन्दों में है । इसमें १
तुक सोहर छन्द के और छः छन्द हैं । यह पूरबी-अवधी भा
में लिखा गया है ।

(३) जानकी-मङ्गल— इसमें श्री सीता-राम के विवाह
वर्णन है । १६२ सोहर छन्द और २४ छन्द कुल मिलाकर
इसकी भाषा अवधी है । रामायण की कथा से इस
कथा में थोड़ा सा अन्तर है । एक तो इसकी कथा
धनुष यज्ञ से प्रारम्भ हुई है; इसके अतिरिक्त और भी
बातों में थोड़ा-बहुत अन्तर है । रामायण के दो-एक स्थलों
छन्द आदि इसके छन्दों से बिलकुल मिलते-जुलते हैं । रामा
में परशुराम विवाह के पहले ही आ गये हैं, लेकिन वाल्मी
रामायण की तरह इसमें विवाह होने और बारात के विदा
जाने पर आये हैं ।

'पार्वती और जानकी मङ्गल' इन दोनों ही पुस्तकों
कविता बहुत गठी हुई और भाषा अ-शिथिल है । छोटे-छ
छन्दों में अर्थ-गाम्भीर्य देखते ही बनता है ।

(४) बरवै रामायण—यह पुस्तक बरवा छन्दों में है।
मायण की तरह, इसमें सात छोटे-छोटे काण्ड हैं और उनमें
त्यन्त संक्षेप के साथ रामायण की कथा कही गयी है। इस
स्तक का क्रम देखने से यह मालूम होता है कि गोसाईंजी ने
से पुस्तकाकार नहीं लिखा, किन्तु स्फुट रूप से इसके छन्द
नते रहे, और आगे चलकर जब इनकी संख्या कुछ अधिक हो
यी तो स्वयं कवि ने अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने क्रम लगा
र इसे पुस्तक का रूप दे दिया। प्रसिद्ध रामायणी पं० शिवलाल
ठक का कहना था कि बरवै रामायण बहुत बड़ा ग्रन्थ था।
ाज-कल जो बरवा रामायण प्रचलित है, वह अपूर्ण और
छन्न-भिन्न है। उनकी बात कितनी सच है, यह कहना तो
ासान नहीं है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में
ो बरवै रामायण उपलब्ध है, उसके क्रम में बहुत कुछ गड़-
ड़ी है।

(५) वैराग्य-सन्दीपनी— इस पुस्तक में सन्त-महात्माओं
लक्षण, उनकी प्रशंसा और वैराग्य के उत्कर्ष का वर्णन है।
स पुस्तक में तीन प्रकाश हैं और दोहा-चौपाइयों में लिखी गई
। पहले प्रकाश में कुल ३३ छन्द हैं और इसमें सन्त-स्वभाव
 वर्णन है। दूसरा ६ छन्दों का है, उसमें सन्त-महिमा-वर्णन
 और तीसरा २० छन्दों का शान्ति-वर्णन है। जान पड़ता है
 घर-द्वार से उदासीन होने के बाद ही गोसाईंजी ने इस
स्तक का निर्माण किया है।

(६) कृष्णगीतावली—६१ पदों में यह पुस्तक पूरी हुई इसमें कृष्णलीला का वर्णन है। भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों सूरदास के पदों की भाँति ही, ये पद लिखे गये हैं। इनकी भ ब्रज है। पद बड़े मधुर और भावपूर्ण हैं। जान पड़ता है यह भी क्रमबद्ध पुस्तक रूप में न लिखा जा कर, गोसाईं जी अन्य अनेक ग्रन्थों की भाँति, फुटकर छन्दों के संग्रह से तै हुआ है।

(७) दोहावली—यह भगवन्नाम-माहात्म्य, तत्वज्ञान, र नीति, कलियुग की दशा, धर्मोपदेश तथा और भी कितने भिन्न-भिन्न विषयों पर कहे हुए ५७३ फुटकर दोहों का सं है। इसमें के बहुत से दोहे तो रामायण, रामाज्ञा, तुलसी स सई, और वैराग्य सन्दीपनी में मिलते हैं। कहा जाता है इसका अन्तिम दोहा—"मनि मानिक मँहगे किये सह तृन जल नाज। तुलसी एते जानिये राम गरीब नेवाज रहीम खानखाना का बनाया हुआ है। ध्यानपूर्वक देखने पर बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि यह पुस्तक फुटकर दोहों ही संग्रह है, फिर इसे चाहे स्वयं कवि ने इकट्ठा किया हो, उनके बाद दूसरे किसी ने। इस पुस्तक में गोसाईं जी तात्विक विचार भरे पड़े हैं। इसे पढ़ने से मालूम होता है वे संसार को किस दृष्टि से देखते थे और गूढ़ से भी विषय पर कैसा मत प्रकट करते थे। प्रेम-तत्व का जो विशु निरूपण उन्होंने चातक की अन्योक्तियों के द्वारा किया है,

यों के लिए आदर्श और प्रेम का चरम लक्ष्य है। उन्होंने देश र समाज की हीनावस्था पर भी बहुत आँसू बहाया है—

अशुभ भेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी ते सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग माहिं॥
बादहिं सूद्र द्विजन सन हम तुम्हतें कुछ घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाँटि॥
साखी सबदी दोहरा कति कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं वेद पुरान॥
स्रुति सम्मत हरि भक्त पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पन्थ अनेक॥
गोड गँवार नृपाल महि जवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल॥
तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन॥

इसी तरह अन्य विषयों पर भी बहुत से गम्भीर विचार पुस्तक में मिलते हैं, जो समाज के लिए कल्याणकारी ह हो सकते हैं।

(८) कवितावली या कवित्त रामायण—यह ग्रन्थ शुद्ध भाषा में कवित्त, घनात्तरी, सवैया और छप्पय छन्दों में इसमें भी क्रमबद्ध रामायण की कथा है, पर मालूम पड़ता ह भी पुस्तक रूप में लिखी नहीं गई। पहले फुटकर छन्द और फिर उन्हें जोड़ कर पुस्तक का रूप दे दिया गया।

इसकी कविता दरबारी कवियों जैसी हो गई है और कह
तो गोसाईंजी ने पूरे भाट की तरह कहा है—

रङ्क के निवाज रघुराज राजा राजन के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए।

कवितावली में, रामायण की तरह ही सात काण्ड
उनमें क्रम से रामायण की कथा इस प्रकार लिखी है—

बालकाण्ड में २१ कवित्त हैं। इनमें रामचन्द्रजी की
लीला से प्रारम्भ करके धनुर्भङ्ग तक की कथा वर्णित है।

अयोध्या काण्ड में वनवास तक की कथा २८ छ
गायी गयी है।

अरण्य काण्ड में केवल १ ही कवित्त है और उसमें
मृग के पीछे रामचन्द्र के जाने का वर्णन है।

किष्किन्धा काण्ड में भी केवल १ कवित्त है और
हनुमानजी के समुद्र लाँघने का विवरण है।

सुन्दर काण्ड ३२ छन्दों का है। इसमें हनुमान
वीरता, लङ्का-दहन और सीताजी की ख़बर लेकर हनु
के वापस लौट आने का वर्णन है।

लङ्का काण्ड में ५८ छन्द हैं। इसमें नल-नील के द्वार
बन्धन, रावण की राज-सभा में अङ्गद का पैर रोपना, युद्ध
लगने से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना और रावण-बध का व

उत्तर काण्ड सबसे बड़ा है। इसमें २२५ छन्द हैं
प्रारम्भ में श्रीरामचन्द्रजी की वन्दना, फिर हनुमानजी की

ौर तब गोपी-ऊधव संवाद, प्रह्लाद-कथा, महादेव की स्तुति, ाशी की स्तुति, काशी की दुर्दशा, अपनी दशा तथा हनुमान ाहुक आदि फुटकर कविताएँ हैं। समझ में नहीं आता कि ाम-कथा से सम्बन्ध न रहने पर भी क्यों इसे उत्तर काण्ड कह र कवितावली में जोड़ा गया है ?

रामकथा से सम्बन्ध न होने पर भी कवितावली के इस ाण्ड की कविताओं से देश और समाज को तत्कालीन वस्था तथा गोसाईंजी की जीवनी पर बहुत कुछ प्रकाश ड़ता है। हम इस पर कुछ विस्तार के साथ विचार करेंगे।

(क) इस बात में मतभेद माना जाता है कि इनके माता-ता इनके बचपन में ही मर गए थे या उन्होंने इनका त्याग र दिया था, लेकिन कवितावली के १९८ वें कवित्त से यह ात स्पष्ट हो जाती है कि बचपन में ये माता-पिता के द्वारा ाग दिये गये थे—'मातु-पिता जग जाइ तज्यो, विधिहु न ाख्यो कछु भाल भलाई।' रामचरित-मानस में भी बचपन ही गुरु के साथ घूमना गोसाईंजो ने स्वयं स्वीकार या है—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सुसूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

(ख) उत्तर काण्ड के ७२,७३ कवित्तों में दीनता प्रकट ते हुए तुलसीदासजी ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं—

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागी बस,
खाए टूक सब के बिदित बात दुनी सो।
राम नाम को प्रभाउ पाउँ-महिमा-प्रताप,
तुलसी को जग मानियत महामुनी सो॥

और,

जायो कुल मङ्गन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी-जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,
जानत हौं चारि फल चारिही चनक को॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवकहिं,
सुनत सिहात सोच विधि हू गनक को।
नाम राम रावरो सयानो कैधों बावरे जो,
करत गिरी तें गरू तिन तें तनक को॥

कुछ लोग इन पद्यों से यह अर्थ निकालते हैं कि ये
कुल के किसी भिक्षुक के यहाँ पैदा हुए थे और घर-घर
माँग-खाकर पले थे; लेकिन यह कल्पना निरर्थक
गोसाईंजी के माता-पिता के सम्बन्ध में जो अनुसन्धा
चुका है, वही प्रामाणिक है। ये पंक्तियाँ तो केवल नम्रता
दीनता दिखाने के लिये लिखी गईं जान पड़ती हैं।

(ग) अनेक कवित्तों में दरिद्रता के दोष, कुटिलता,
काल का प्रभाव, अकाल का कोप और राजा के अन्या

र्णन भी है। ९६, ९७ घनाक्षरी में तात्कालिक देश-दशा का रा और यथार्थ चित्र दीख पड़ता है—

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेट की॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घन श्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥

और,

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?'॥
बेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु!
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी॥

(घ) तुलसीदासजी जाति-पाँति को विशेष महत्त्व नहीं ा थे। उनका विश्वास था कि रामचन्द्र की भक्ति और

सदाचरण, ये वस्तुएँ जाति-पाँति से अधिक ऊँची चीज़ें है
इसीसे उन्होंने स्थान-स्थान पर लिखा है —

'जाति-पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई ।।'

और,

'धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोउ
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोउ
तुलसी सरनाम गुलाम हैं राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओउ
माँगि के खैबो मसीद को सोइबो, लेनो है एक न देनो है दोउ

इन पद्यों से ज्ञान पड़ता है कि गोसाईं जी की दृष्टि
जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं था। वे पहुँचे हुए भक्त
महात्मा थे, अतः ऐसा होना उनके लिए उचित और स्वा
विक ही था।

(ङ) मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में भी उनका मत यह था
ईश्वर तो सभी जगह वर्तमान है। हम कहीं भी उस
अस्तित्व मान कर उसकी पूजा कर सकते हैं। लेकिन
पूजा का जो अर्थ क्रियात्मक रूप में लिया जाता है, वह
नहीं है। तुलसीदास ने—'पत्थर क्यों पूजा जाता है'—प्रह्ल
चरित्र में इस बात की व्याख्या इस रूप में की है —

प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे।

पत्थर का खम्भा फाड़ कर नृसिंह भगवान् का अव
हुआ था—तभी से लोगों की प्रीति और विश्वास बढ़
और वे पत्थर की पूजा करने लगे।

(च) कवितावली के अन्तिम भाग में जो कविताएँ वे हनुमान बाहुक के नाम से प्रसिद्ध हैं। क्षेमकरी के दर्शन बाद ही ये छन्द लिखे गये हैं। उस समय गोसाईंजी को ग हो गया था और वे कष्ट में थे। इसीसे इन छन्दों में उनकी र्तता, विह्वलता और पीड़ा की अनुभूति स्पष्ट रूप से फूट ी है। एक स्थान पर वे कहते हैं—

असन-बसन-हीन, विषय विषाद लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय-हाय को ?
तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सील सिन्धु आपने सुभाय को ॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइ गो
बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को ।
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस,
फूटि-फूटि निकसत लोन रामराय को ॥

इस छन्द से मालूम पड़ता है कि गोसाईंजी को अन्तिम मय में फोड़े भी निकल आये थे और बड़ा कष्ट मिला था। गे हम यह बात लिख चुके हैं कि उन्हें प्लेग हो गया था, ल में गिल्टी निकल आयी थी, बाँह में दर्द भी बड़ा भयानक । पहले यह दर्द बाँह की जड़ से उठा और फिर फैलते ते सारे शरीर में फैल गया। ज्वर भी आने लगा। फोड़े कल आये। वे अत्यन्त घबरा गये और जीवन से निराश हो । उन्होंने अनेक प्रकार से रामचन्द्र, हनुमान, महादेव

और भैरव की वन्दना की ।। तरह-तरह की दवाएँ और
टोटके, यन्त्र-मन्त्र आदि का सहारा लिया, पर किसी से
लाभ न हुआ; तब उन्होंने ने यह कहकर सन्तोष किया
'तुमतें कहा न होय हाहा ! सो बुझैये मोहिं, हौं हू रहौं
ही, बयो सो जानि लुनिए ।'

(६) गीतावली—यह पुस्तक व्रज भाषा में है और क्र
पुस्तक-रूप में ही लिखी गई जान पड़ती है क्योंकि इसकी शृ
कहीं टूटी हुई नहीं दीखती । यह भी भिन्न-भिन्न राग-र
नियों में लिखी गई है। इन कविताओं में पद-लालित्य, मधु
और प्रसाद गुण का बाहुल्य है । सूरदास आदि के पदे
तरह इन पदों में भी सरसता और मनोहरता का सुन्दर सम
हुआ है। इसमें भी सात काण्ड हैं और उनमें इस प्रका
रामकथा का समावेश हुआ है—

बाल काण्ड—इसमें ११० पद हैं । मङ्गलाचरण से प्र
करके, रामचन्द्र के विवाह तक की कथा इस काण्ड
गई है ।

अयोध्या काण्ड में ८९ पद हैं । इसमें रामचन्द्रजी
युवराज पद देने की तैयारी से लेकर रामचन्द्र के वनवास
भरत के नन्दिग्राम में रहने तक की कथा कही गई है ।

अरण्य काण्ड में १७ पद हैं। पञ्चवटी में रामचन्
सीता और लक्ष्मण के सहित निवास, सुवर्ण-मृग पर सी
का मोहित होना, रामचन्द्र का उसके पीछे जाना, सीता-

रावण से जटायु का युद्ध, राम-विलाप, जटायु की अन्त्येष्टि और शबरी से भेंट होने तक की कथा है।

किष्किन्धा काण्ड में केवल दो ही पद हैं और उनमें सीताजी के गहनों को देख कर रामचन्द्रजी का विलाप तथा सीताजी की खोज में बानरों के निकलने की कथा है।

सुन्दर काण्ड ५१ पदों का है। इस काण्ड में हनुमान का अशोक वाटिका में सीताजी से मिलना, पकड़ा जाकर रावण की सभा में ले जाया जाना, लङ्का-दहन, रामचन्द्र के पास लौट कर आना, लङ्का के लिए बानरों की सेना का प्रस्थान, सेतु-बन्धन, विभीषण का रामचन्द्र की शरण में आना, सीता का विलाप और त्रिजटा का उन्हें समझाना, यह सब कथा आ गई है।

लङ्का काण्ड में २३ पद हैं। इसमें लक्ष्मण की मूर्च्छा, रावण-बध आदि और रामचन्द्र का सीता को लेकर अयोध्या लौटने का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

उत्तर काण्ड में ३८ छन्द हैं। राम-राज्य, रामचन्द्र की शोभा, राम-राज्य की प्रशंसा, अपवाद सुन कर लक्ष्मण के द्वारा सीता को वन में भेज देना, वहीं लवकुश का जन्म और इस प्रकार पुस्तक की समाप्ति है।

इस पुस्तक के कई छन्द, सूरसागर के छन्दों से ज्यों के त्यों मिलते हैं, केवल राम-श्याम का भेद कर दिया गया है। यह कहना उचित नहीं जान पड़ता कि तुलसीदासजी ने इन

पदों की सुन्दरता पर प्रसन्न होकर, नाम बदल कर इन्हें अ
पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है । अतः यही समझना ठ
और युक्ति-संगत जान पड़ता है कि पीछे से उनके कि
शिष्य ने इन पदों को गीतावली में सम्मिलित कर दिया
उदाहरण के लिए दो-एक पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

आँगन खेलत घुटुरुवन धाए ।
नील जलद तनु सुभग स्याम मुख निरखि जननि दोउ निकट बुलाए
बँधुक सुमन-अरुन पद-पङ्कज अङ्कुस प्रमुख चिह्न बनि आए ॥

* * *

अङ्ग अङ्ग प्रति मार निकट मिलि छवि समूह लै लै जनु छाए ।
सूरदास सो क्यों करि बरनै जो छबि निगम नेति करि गाए ॥

ज्यों का त्यों यही पद गीतावली में भी मिलता है । के
अन्तिम पंक्ति इस रूप में बदली हुई है—'तुलसिदास रघुन
रूप-गुन तौ कहौं जो विधि होहि बनाए।'

(१०) रामाज्ञा—यह शकुन विचारने की प्रश्नमाला
४९-४९ दोहों के सात अध्यायों में बनी है । प्रत्येक अध्याय
सात सप्तक और प्रत्येक सप्तक में ७ दोहे हैं । इनमें प्रत्
अध्याय में रामायण की कथा के व्याज से शकुन का फल क
गया है ।

यह तो निश्चित है कि गोसाईंजी ने शकुन विचारने
लिए ही ख़ास तौर से इस ग्रन्थ का निर्माण किया है, फ

ह यह किसी के अनुरोध से किया हो, या अपनी इच्छा से। कि, इसके दोहों से सर्वत्र ही शकुन का फल पाया जाता राम-कथा तो गौण हो गई है। पुस्तक के अन्त में शकुन ारने की रीति भी इस प्रकार दी हुई है।—

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति, सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन, सगुन समय अनुहारि॥

पुस्तक के प्रारम्भ में तीन चक्र बने हुए हैं और उनमें ; लिखे हुए हैं। क्रम से उन तीनों चक्रों में उँगलियाँ रख एक-एक अङ्क निकालना पड़ता है; और फिर, पहले चक्र के ; का अध्याय, दूसरे का सप्तक और तीसरे का दोहा मिला- प्रश्न का उत्तर जाना जाता है।

इस पुस्तक के लिखे जाने के सम्बन्ध में डाक्टर ग्रियर्सन अपने एक लेख में एक कहानी लिखी है। कहानी कहाँ तक त्र है, यह हम नहीं कह सकते, लेकिन अपने पाठकों की नकारी के लिए उसे उद्धृत करते हैं।

काशी में राजघाट के राजा गहरवार क्षत्रिय थे। एक बार के कुमार वन में शिकार खेलने गये। वहाँ उनके किसी थी को बाघ खा गया। राजा को समाचार मिला कि कुमार ही बाघ खा गया है। इस समाचार से वे बहुत घबरा गये र अपने ज्योतिषी गङ्गाराम को बुला कर उन्होंने कहा कि

राजकुमार के बारे में ठीक-ठीक बात बतलाइये । अगर
की बात सच होगी तो आप को एक लाख रुपया इनाम मि
और अगर झूठ निकली तो आप का सिर काट
जायगा। राजा की आज्ञा सुन कर गङ्गाराम बहुत चिन्ति
गये और राजा से एक दिन का समय लेकर घर लौट
गङ्गाराम की गोसाईंजी से बड़ी मित्रता थी। ये दोनों
नित्य गङ्गा-पार जाया करते और वहाँ भगवद्भजन किया
थे। उस दिन उदासी के कारण गङ्गाराम ने जाने से इनका
दिया । गोसाईंजी को जब सब बात मालूम हुई तो उ
कहा, तुम घबराओ मत। यह बात मैं ठीक-ठीक बतला दूँ
उनके कहने से आश्वस्त हो कर गङ्गाराम उस दिन भी
साथ गंगा के पार गये और जब ईश्वरोपासना कर
लोग लौटे तो गोसाईंजी ने लिखने की सामग्री माँगी। स
से कागज़ के सिवा उस दिन और कोई चीज़ मिली ही
तब गोसाईंजी ने सरकण्डे के एक टुकड़े को लेकर क
लिखना शुरू किया और लगातार छः घण्टे तक लिख क
रामाज्ञा प्रश्न तैयार किया। इसी से शकुन विचार कर गङ्
ने राजा को फल बतलाया और उसके ठीक उतरने पर रा
द्वारा एक लाख रुपये का पुरस्कार पाया । गङ्गाराम ने व
रुपया गोसाईंजी को ही भेंट करना चाहा, परउन्होंने इ
कर दिया और बहुत आग्रह करने पर बारह हज़ार रुपया
हनुमानजीके बारह मन्दिर बनवा दिये जो अब तक वर्तमा

मालूम पड़ता है कि रामाज्ञा प्रश्न के पहले सर्ग के अन्तिम
से ही इस कहानी की उत्पत्ति हुई है। वह दोहा इस
र है—

सगुन प्रथम ओनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर, गोगन गङ्गाराम॥

(११) विनय पत्रिका—यह काफ़ी बड़ी पुस्तक है। भिन्न
राग-रागिनियोंमें यह लिखी गई है। कहते हैं कि एक बार
हत्यारा रास्ते-रास्ते यह कहता फिर रहा था—"मैं हत्यारा
हूँ कोई राम का प्यारा जो राम के नाम पर मुझे खिला दे।"
सीदासजी ने उसकी बात सुनी और उसके मुँह से
चन्द्रजी का नाम सुना तो प्रेम-विवश हो उसे बुलाकर महा-
द खिलाया। यह बात जब काशी के पण्डितों को मालूम
तो वे बहुत बिगड़े और पूछा कि 'आपने कैसे इसे खिला
ा और कैसे इसकी हत्या छूट गई?' तुलसीदासजी ने उत्तर
ा कि—'राम-नाम के प्रभाव से। अभी आप लोग नाम का
ात्म्य नहीं जानते।' लेकिन उनकी इस बात से किसी को
तोष नहीं हुआ। गोसाईंजी ने तब उनसे पूछा कि 'कैसे
को सन्तोष होगा?' उत्तर मिला—'यदि शिवजी का
दिया इसके हाथ का छुआ खा ले तो हम लोग सन्तुष्ट हो
यँगे।' वैसा ही हुआ। शिवजी के पत्थर के नादिये ने उस
ारे के हाथ का अन्न खा लिया और पण्डित लोग लज्जित
र रह गये। इस पर कलियुग को बड़ा क्रोध आया और

वह प्रत्यक्ष रूप से गोसाईंजी को धमकाने लगा। उ
धमकी सुन कर गोसाईंजी ने हनमानुजी के पास प्रार्थना
हनुमानजी ने कहा—भाई, वह इस युग का राजा है, इस
मैं स्वयं तो उसके विरुद्ध कोई काम कर नहीं सकता।
एक काम करो। एक विनय-पत्रिका लिख कर मुझे दो
उस पर स्वामी (रामचन्द्रजी) की सही करवा लाऊँ
इसके दण्ड की व्यवस्था हो। गोसाईंजी ने ऐसा ही
और इसी के परिणामस्वरूप इस विनय-पत्रिका का
हुआ।

यह कथा भी उन्हीं अनेक अलौकिक घटनाओं में से
पड़ती है, जो तुलसीदासजी के साथ जोड़ दी गई हैं।
कथा में से भी अनेक तथ्यपूर्ण बातें निकल सकती हैं
पत्थर के नादिये का अन्न खा जाना, कलियुग का प्रत्यक्ष हो
गोसाईंजी को धमकाना आदि ऐसी बातें हैं, जिन पर स
रणतः हमारे जैसे साधारण बुद्धिवालों को विश्वास क
कठिन-सा हो जाता है; लेकिन, इनके विरोधमें कुछ भी
से धार्मिक-जनों के कोपका भागी बनना पड़ेगा, फलतः चु
कर वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही बुद्धिमानी
अस्तु,

जो कुछ भी हो, विनय-पत्रिका के अन्तिम पदों से
उक्त कथा के अन्तिम अंश का प्रतिपादन होता है। वि
पत्रिका का अन्तिम पद इस प्रकार है—

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलिकालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किङ्कर की निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब नेवाज़ की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।
मुद्रित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥

विनयपत्रिका के पदों में गोसाईंजी का प्रकाण्ड पाण्डित्य ग-पग पर दीख पड़ता है। इसमें जितनी भाव-गम्भीरता, द-लालित्य, रसातिरेक, अर्थगौरव, वाक्य-विन्यास की पटुता ौर उक्ति वैचित्र्य है, उतना उनके अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं ोख पड़ता। इसमें शब्दों के बाहुल्य की भी अद्भुत छटा ोख पड़ती है और सबसे बढ़ कर तो यह बात है कि उन्होंने स पुस्तक में अपना हृदय खोल कर रख दिया है।

कुछ लोगों का कहना है कि विनयपत्रिका को तुलसीदासजी स्वयं पुस्तक रूप में नहीं लिखा, किन्तु फुटकर पद्यों का ंग्रह करके उन्हें यह रूप दे दिया गया है। लेकिन, यह बात ोक नहीं मालूम पड़ती। ध्यानपूर्वक विनयपत्रिका पढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसे गोसाईंजी ने स्वयं ही क्रमबद्ध पुस्तकाकार लिखा है। अन्त में लिखे हुए पद भी इस ात के पुष्ट प्रमाण हो सकते हैं।

विनयपत्रिका का अधिकांश तो काशी में ही लिखा गया ै, लेकिन इसका कुछ हिस्सा चित्रकूट और प्रयाग में भी

लिखा गया जान पड़ता है। ग्रन्थ के आरम्भ में गोसाईं
गणेश, शिव, सूर्य, भैरव, पार्वती गङ्गा और न जाने कितने
देवताओं की स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना की है कि
रामचन्द्र के चरणों की भक्ति दो। हनुमानजी की प्रार्थन
भी बहुत से पद हैं, जिनमें के अनेक तो दूसरी-दूसरी पुस
के हैं।

विनयपत्रिका में कुछ ऐसे भी पद हैं, जिनसे गोसा
के जीवन पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है। उदाहरण
लिए—

राम को गुलाम नाम रामबोला राम राख्यो,
काम इहै नाम ह्वैहौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखे आगे हू को वेद भाखे,
भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं॥
आरत अनाथ नाथ कोसलपाल कृपाल लीन्यो,
छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं।
बाँध्यो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़
सुनत दुसह हौं साँसति सहत हौं।
पूछ्यो ज्यों ही कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू
मेरे कोऊ कहूँ नाहीं चरन गहत हौं।
मीज्यो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥

लोग कहैं पोच सो न सोच न सँकोच मेरे
ब्याह न बरेखो जाति-पाँति न चहत हौं ।
तुलसी अकाज-काज राम ही के रीझे-खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥

(१२) रामचरित-मानस—इसे रामायण भी कहते हैं। यह गोसाईं जो के सब ग्रन्थों से बड़ा और प्रसिद्ध है । इस का जितना प्रचार साधारण जनता में हुआ,हिन्दी के और ी कवि के किसी ग्रन्थ का उतना नहीं हुआ। यह हिन्दुओं धर्म-ग्रन्थ माना जाता है । इसके प्रचार का सबसे बड़ा ण यह है कि इसके दस-पाँच दोहे-चौपाई एक अपढ़ चमार कर, बड़े-बड़े विद्वानों तक को याद हैं । हिन्दू-जनता में पुरुष, बालक- वृद्ध सभी की ज़बान पर रामायण के छन्द ही दीख पड़ेंगे। बड़े-बड़े राजाओं के महलों से लेकर दरिद्र रिद्र की झोपड़ी तक में रामायण की अबाध गति है। इस न्देह नहीं है कि रामायण तुलसीदास की उत्कृष्ट रचना र उस समय से आज तक, उसके जोड़ का दूसरा कोई -ग्रन्थ नहीं लिखा गया। यह बात नहीं कि केवल काव्य ष्टि से ही रामायण बड़े महत्व का ग्रन्थ हो, बल्कि उसमें ीति, समाजनीति और नीति के उपदेशों का सर्वत्र ही य है। स्त्रियों के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है । और जहाँ इसमें पातिव्रत का महत्व, धर्म की मर्यादा, कष्ट- की अपार क्षमता, स्त्री की शक्ति, उसका कर्तव्य और उसके

त्याग का आदर्श दिखलाया गया है, वहीं मातृ-भक्ति, पितृ-
और निर्लोभता आदि का उज्ज्वल उदाहरण भी उप
किया गया है। यही कारण है कि यह ग्रन्थ स्त्री-पुरुष स
द्वारा समान रूप से पूजित है।

इसकी रचना दोहे-चौपाइयों में हुई है। गोसाईंजी ने
संवत् १६३१ चैत्र शुक्ल नवमी (रामनौमी) मङ्गलवा
लिखना प्रारम्भ किया—जैसा कि रामायण के आरम्भ
स्वयं लिखते हैं—

संवत् सोरह सौ इकतीसा। कहउँ कथा हरि-पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

गोसाईंजी ने बचपन में ही बार-बार अपने गुरु के मु
राम-कथा सुनी थी और उसी समय से उन्होंने इस
को लिपिबद्ध करने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने
लिखा है—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसार
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई

तुलसीदासजी के कथनानुसार रामायण की कथा
शिवजी ने उमा को और फिर कागभुसुण्डी को सुन
कागभुसुण्डि ने याज्ञवल्क्य से और याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज
से वही कथा कही। जैसे—

ागबलकि जो कहा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई॥
भु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
ोइ सिव काग भुसुण्डिहिं दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा॥
हि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

निम्न लिखित दोहों से ऐसा जान पड़ता है कि छोटी स्था में ही गोसाईं जी ने रामायण की रचना आरम्भ कर थी।

सन्त सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥
कवि कोबिद रघुबर चरित, मानस-मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल॥

लेकिन, बहुत सम्भव है, केवल नम्रता दिखलाने के उद्देश ही ये दोहे लिखे गये हों, ऐसी अवस्था में यह निश्चय कर । कुछ बहुत उचित नहीं प्रतीत होता कि बाल्यकाल में ही का प्रारम्भ किया गया था।

रामायण का लिखना कब और कहाँ समाप्त हुआ, इसका ठीक पता नहीं मिलता, क्योंकि ग्रन्थ के आरम्भ में जिस र आरम्भ करने का समय दिया हुआ है, उसी प्रकार के अन्त में समाप्ति के समय का निर्देश कहीं नहीं है। जान ा है, इसका बहुत सा अंश अयोध्या में और बाक़ी काशी लिखा गया है। यह केवल अनुमान ही अनुमान है और

इस अनुमान का यही आधार है कि और कहीं काशी का नाम नहीं आया, लेकिन किष्किन्धा काण्ड मङ्गलाचरण में गोसाईंजी ने इस प्रकार काशी की ब की है—

मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइअ कस न॥

रामायण में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यक किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लङ्काकाण्ड और उ काण्ड के नाम से सात काण्ड हैं। कुछ लोगों ने साथ 'लवकुशकाण्ड' नाम का एक आठवाँ काण्ड भी दिया है, पर वह गोसाईंजी कृत नहीं माना जाता। रामायण दोहे-चौपाई, सोरठा और छन्दों में लिखी गई कहीं-कहीं त्रोटक आदि जैसे छन्द भी आये हैं, पर उ संख्या बहुत कम है।

तुलसीदासजी की रामायण का मूल आधार तो वाल्म रामायण ही है, लेकिन उन्होंने वालमीकि रामायण के अति अध्यात्म-रामायण,कागभुशुण्डी रामायण आदि से भी जहाँ- सहायता ली है और उसके अनुसार घटना-क्रम में परिवर्तन दिया है, यही कारण है कि वालमीकि रामायण से तुलसी की रामायण की घटनाओं का तारतम्य ज्यों का त्यों र नहीं रह सका, बल्कि अनेक स्थानों पर उससे अन्तर आ है। मालूम पड़ता है कि रामायण का 'रामचरित-मानस'

गोसाईं जी ने कागभुसुन्ड रामायण से ही लिया है।
ुन्डि ने कहा है—

मुनि मोहिँ कछुक काल तहँ राखा।
रामचरित मानस तब भाखा॥

के अतिरिक्त गोसाईं जी ने छोटी-छोटी उक्तियों, ब्यौरों
ृष्टावतों आदि का संग्रह भी श्रीमद्भागवत, कालिदास
श, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव आदि से लिया है। ऐसे
ाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

रथ की वृद्धावस्था का वर्णन कालिदास ने रघुवंश में
ह किया है—

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयी शङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा॥

ा भाव की गोसाईं जी की चौपाइयाँ देखिए—

नाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु विलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
ामीप भये सित केसा। मनहु जरठ पनु अस उपदेसा॥
वराज राम कहँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

ा प्रकार वर्षा और शरद के वर्णन भी प्रायः ज्यों के त्यों
ावत से ले लिये गये हैं। उदाहरण के लिए—

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युत जनागमे॥

(श्रीमद्भागवत)

लछिमन देखहु मोर गन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरत रत हरष जस, विष्णु भगत कहँ देखि॥

(रामचरित मानस

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नित्यमात्यये॥

(श्रीमद्भागवत

दादुर धुनि चहुँ दिसा सोहाई। वेद पढ़त जनु बटु समुदाई

(रामचरित मानस

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्‌भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापञ्च दैवाधीनमजानताम्॥

(श्रीमद्भागवत

सस सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी की सम्पति जैसी

(रामचरित मानस

जलौघैर्निरभिद्यन्त सतवो वर्षतीश्वरे।
पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा॥

(श्रीमद्भागवत

हरितभूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड-विवाद तें, लुप्त होहिं सद्‌ग्रन्थ॥

(रामचरित मानस

शारदानीरजोत्पत्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योग निसेवया॥

(श्रीमद्भागवत

सरिता सर निर्मल जल सोहा। सन्त हृदय जस गत मद-मोहा ॥

(रामचरित मानस)

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमल तारकम् ।

सत्वयुक्तं यथाचित्तं शब्द ब्रह्मार्थदर्शनम् ॥

(श्रीमद्भागवत)

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, रामायण का हिन्दू हृदयों पर बड़ा ज़बर्दस्त अधिकार है। उत्तर-भारत में तो इसका प्रचार बहुलता से है ही, लेकिन जिन प्रान्तों में हिन्दी भाषा समझनेवाले लोग नहीं हैं, वहाँ भी रामायण की कथा कही-सुनी जाती है। बहुत से तो अ-हिन्दी-भाषी लोगों ने केवल रामायण पढ़ने के लिए ही हिन्दी भाषा का अध्ययन किया है और अब भी कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विदेशियों में भी इस ग्रन्थ का अच्छा आदर है। डाक्टर ग्रियर्सन, रेवेरेन्ड ग्रीव्स आदि कितने ही यूरोपीय विद्वान् भी रामायण के अच्छे ज्ञाता हो गये हैं और उन्होंने रामायण के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा भी है। संसार की कई भाषाओं में रामायण का अनुवाद हो चुका है। क़ुरान और इञ्जील की तरह, रामायण हिन्दुओं का धर्म-ग्रन्थ है, यह कहना अयुक्त न समझा जायगा।

रामायण इतना लोक-प्रिय ग्रन्थ क्यों है? इसका एक ही उत्तर है, और वह यह कि इस ग्रन्थ में मनुष्य जीवन के रोजमर्रा की घटनाओं और मानव-स्वभाव तथा मनुष्य की परिस्थितिय

का इतना स्वाभाविक, इतना मर्मस्पर्शी और इतना सुन्दर चि
खींचा गया है, जिससे मनुष्य का प्रभावित हो जाना बिल
स्वाभाविक बात है। रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन
कथा भी वैसी ही लोकोत्तर और पुण्यमयी है और जैसी प
उनकी कथा है, उसके कहने के लिए वैसी ही पवित्र व
का संयोग होने पर, वह क्यों न हिन्दू-हृदयों का भू
बन जाय ?

रामायण से न केवल तुलसीदासजी की कीर्ति ही अ
रहेगी, किन्तु इसके द्वारा हिन्दी-साहित्य का आदर और गौ
विश्व-साहित्य में बढ़ता रहेगा। केवल इसी एक ग्रन्थ
साधारण जनता को नीति के उपदेश, विपत्ति में सहन-शील
और धैर्य्य, सत्कर्मों में प्रवृत्ति, कठिन समस्याओं को दृढ़ हो
सुलझाने की शिक्षा मिलती है। लक्ष्मण और भरत का आ
भ्रातृ-प्रेम, सीता की पति परायणता, रामचन्द्र की पितृ-भ
आदि जैसे आदर्श-उदाहरण तुलसीदास की रामायण में प
जाते हैं, वैसे संसार में बहुत कम मिलेंगे। कवि ने इसमें र
कथा के मिस से एक पूरे जीवन का सफल और उज्ज्वल अ
अनुकरणीय चित्र खींच कर रख दिया है।

रामायण की कथा भाषा में लिखने के कारण काशी
पंडित गोसाईंजी से नाराज़ हो गये थे, और रामायण
प्रामाणिकता के सम्बन्ध में ही सन्देह करने लगे थे, प
विश्वनाथजी के सही कर देने पर उनका अविश्वास दूर हुआ

रामायण की भाषा अवधी है, लेकिन रामलला-नहछू आदि
की तरह पूरबी अवधी न होकर पछाहीं मिश्रित है—कहीं-कहीं
पर ब्रजभाषा की झलक भी दीख पड़ती है, लेकिन ऐसे स्थल
बहुत कम हैं, केवल नाम मात्र की ब्रज-भाषा जहाँ-तहाँ आ
गई है।

यहाँ हम रामायण की संक्षिप्त कथा लिखते हैं। रामायण
और गोसाईंजी के जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है—कहा जाय तो
यह कहा जा सकता है कि रामायण ही उनका जीवन है—
अतः रामायण की कथा लिखना यहाँ अप्रासङ्गिक न समझा
जायगा। इससे पाठकों का मनोरञ्जन जो होगा, वह तो होगा ही,
इसके अतिरिक्त रामायण के मुख्य-मुख्य पात्रों पर भी थोड़ा
प्रकाश पड़ सकेगा और पाठकों को मालूम हो सकेगा कि
गोसाईंजीने राम-सीता और लक्ष्मण-भरत के रूप में कैसा
आदर्श हमारे सामने रखना चाहा है।

रघुवंश में दशरथ नाम के एक प्रतापी राजा हुए। उनके
तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। कैकेयी
सबसे छोटी थी और राजा का उस पर बड़ा अनुराग था।

बहुत दिन बीत गए—राजा को कोई सन्तान न हुई।
गुरु की आज्ञा से उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञ में अग्नि
भगवान् प्रसन्न हुए। प्रकट होकर उन्होंने एक 'चरु' दिया और
कहा कि इसे रानियों को बाँट कर खिला देना।

रानियों ने चरु के टुकड़े खाये। समय पाकर उन्हें ग
और कौशल्या के राम, सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रु
कैकेयी के भरत नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। चारों भाई धी
बढ़ने लगे और अपनी बाल-क्रीड़ा से माता-पिता का हृदय
करने लगे।

रामचन्द्र स्वयं भगवान् के अवतार थे। उनकी प्रतिभ
विलक्षण थी। लक्ष्मण से वे विशेष स्नेह रखते थे। ल
की भी उन पर अपार श्रद्धा-भक्ति थी।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। एक बार भगवान् वि
मित्र अपने आश्रम से दशरथ के यहाँ पधारे। उस
मारीच और सुबाहु नाम के उत्पाती राक्षसों ने आश्रम में
उपद्रव मचा रक्खा था और मुनियों की तपः-साधना में
विघ्न डालते थे। विश्वामित्र ने यह बात दशरथ से कही
अपनी सहायता के लिए राम-लक्ष्मण को माँगा। पह
राजा हिचकिचाए—पर, पीछे विश्वामित्र के साथ दोनों
को भेज दिया।

राम और लक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र तपोव
लौटे। मार्ग में ताड़का नाम की एक राक्षसी मिली। रामच
एक ही बाण से उसे मार डाला। फिर मारीच और
का भी वध किया।

इसी समय जनकपुर में सीता-स्वयम्वर का आ
हुआ। मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के

लिए धनुष-यज्ञ किया। इस यज्ञ में यह शर्त थी कि शिवजा
धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) जो चढ़ा देगा, सीता उसीसे
ही जायगी। इस स्वयम्वर में देश-देश के राजा-महाराजा
रहे थे। विश्वामित्र को यह ख़बर मिली तो रामल-क्ष्मण के
थ वे भी सीता-स्वयम्वर देखने के लिए चले।

मार्ग में अनेक नदी-नाले, वन-पर्वत पार करते हुए विश्वा-
त्र के साथ दोनों भाई चले जा रहे थे। एक स्थान पर एक
ला पड़ी हुई थी। विश्वामित्र ने बतलाया कि यह गौतम की
ी अहल्या है और शाप के वश शिला हो गई है। रामचन्द्र ने
पने पैरों की धूल देकर अहल्या को शाप से मुक्त किया।

तब राज-सभा में पहुँचे। वहाँ देश-देश के राजा इकट्ठे थे,
ा समारोह था। सभी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने
ये थे। भला सीता जैसी पत्नी किसे प्राप्त हो सकती।

बड़े-बड़े बलवानों, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने धनुष को
ठाने का प्रयत्न किया; लेकिन, उठाना तो दूर, वे उसे टस-से-
स न कर सके। तब जनक को बड़ी निराशा हुई। उन्होंने
हा—

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि बिवाहू॥

यह तो यह, उन्होंने और भी कहा—

अब जनि कोउ भाषै भट मानी। बीर विहीन मही मैं जानी॥

भला यह बात लक्ष्मण कैसे बर्दाश्त कर सकते थे? उन्होंने
दो की चार सुनाई और कहा कि यदि गुरु और भाई की

आज्ञा हो तो अभी—सब के देखते-देखते—मैं मूली की
पर्वत को तोड़ डालूँ—या सारे ब्रह्माण्ड को लेकर सौ यो
दौड़ आऊँ। यह पुराना धनुष बेचारा किस गिनती में

लक्ष्मण बहुत उत्तेजित हो रहे थे—रामचन्द्र
रोका। फिर गुरु की आज्ञा से रामचन्द्र धनुष पर
चढ़ाने के लिए उठे।

रामचन्द्र ने धनुष उठाया और तोड़ डाला—सारी
हलचल मच गई। बड़े-बड़े बली और गर्वीले राजा-महार
का गर्व चूर्ण हो गया—सैकड़ों-मुँह, सैकड़ों तरह
सुन पड़ने लगीं।

इसी समय परशुराम सभा में आये—आकर देखा
का धनुष टूटा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है। देख कर परशु
तो जैसे जल उठे। शिवजी उनके गुरु थे। गुरु के ध
यह अपमान वे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे?—बहुत
कहने लगे—जिसने शिव का धनुष तोड़ा है, मैं बिना उ
न छोड़ूँगा।

लक्ष्मण का स्वभाव ज़रा उग्र था। वे किसी को अ
बात सुन न सकते थे। परशुरामजी जब बहुत दून की
लगे, तब लक्ष्मणजी सामने आये। बोले—महाराज,
धनुष था। छूते ही टूट गया—इसमें किसी का दोष क्या

लक्ष्मणजी की इस दिल्लगी से परशुरामजी और चिढ़
और, वे ज्यों-ज्यों चिढ़ने लगे, लक्ष्मण त्यों ही त्यों उन्हें

। रामचन्द्र ने जब देखा कि बात बहुत बढ़ी जा रही है,
नक्ष्मण को मना कर दिया। बाद में जब परशुरामजी को
म हुआ कि रामचन्द्र भगवान के अवतार हैं, तब वे उनकी
ति करके तपस्या करने चले गये।

इधर धनुर्भङ्ग का संवाद अयोध्या भेजा गया। महाराजा
रथ बारात सजाकर अयोध्या से आये और बड़ी धूम-धाम
सीता के साथ राम का, उर्मिला के साथ लक्ष्मण का तथा
डवी और श्रुतकीर्ति का क्रम से भरत और शत्रुघ्न से ब्याह
गया। दुलहिनों को लेकर आनन्दपूर्वक बारात अयोध्या
र आई।

एक बार राजा दशरथ आइने में अपना मुँह देख रहे थे।
होंने देखा—कान के पास के बाल सफ़ेद हो रहे हैं, मानो,
यह उपदेश दे रहे हों कि अब रामचन्द्र को युवराज-पद दे
। बस दशरथ उसी समय गुरु के पास गये। गुरु ने भी
ज्ञा दे दी। रामचन्द्र को युवराज-पद देने की तैयारियाँ
धाम से होने लगीं।

मन्थरा नाम की कैकेयी की एक कुबरी दासी थी। वह बड़ी
टल थी। उसने जब यह तैयारियाँ देखीं तो जाकर कैकेयी के
भरे—तुम्हारा बेटा तो मामा के यहाँ भेज दिया गया
और इधर गुपचुप राम को राजा बनाने की तैयारियाँ हो
हैं।

कैकेयी के मन में बात बैठ गई। वह कोप भवन में ज
राजा कैकेयी को सबसे ज़्यादा प्यार तो करते ही थे—उ
कोपभवन में देखा तो बहुत व्याकुल हो गये। कसमें दे
उससे नाराज़ होने का कारण पूछने लगे। रानी ने रा
की शपथ दिला कर राजा से प्रतिज्ञा करा ली कि वह जो
राजा को वही करना पड़ेगा।

बहुत दिनों पहले, एक बार राजा दशरथ देवासुर-
में इन्द्र की मदद करने के लिए गये थे। कैकेयी भी साथ
लड़ाई में—संयोग से—दशरथ के रथ की धुरी टूट गई।
लड़ाई में तन्मय थे—देख न सके। रानी ने देखा—देखकर
की जगह अपनी उँगली लगा दी। पीछे, लड़ाई में विजय
के बाद, यह बात राजा को मालूम हुई। उन्होंने कैकेयी
वर माँगने के लिए कहा। कैकेयी ने वह वर उन्हीं के पास
रक्खे और कहा—ज़रूरत पड़ने पर माँग लूँगी।

आज वही बात उसे याद आ गई। उसने कहा—
कोई चीज़ नहीं माँगती। मुझे मेरे ही दोनों पुराने वर दे दी

और—वर में उसने माँगा क्या?—भरत को रा
और रामचन्द्र को चौदह वर्ष का वनवास।

राजा ने सुना तो सहम गये। जान पड़ा—जैसे सपना
रहे हों। बहुत रोये-गिड़गिड़ाये, बहुत मिन्नतें कीं, कहा
राज्य भरत को दिये देता हूँ, राम को वन भेजने का आग्र
करो, लेकिन कैकेयी टस-से-मस न हुई।

रामचन्द्र को जब पिता के इस धर्म-सङ्कट की बात मालूम तो स्वयं पिता से आज्ञा लेकर वे वन जाने को तैयार हो । कहाँ राज्य मिलने वाला था—कहाँ वनवास की व्यव- हो गई; लेकिन, इससे रामचन्द्र के मन पर कोई असर न ा। वे हर हालत में ख़ुश थे।

सीता को जब यह ख़बर मिली तो पति के साथ जाने को भी आमादा हो गई। रामचन्द्र ने बहुत समझाया-बुझाया, ुत डर-भय दिखाया, वन के कष्टों का उल्लेख किया, लेकिन पतिपरायणा नववधू कष्टों से घबराकर कब पति का साथ ड़ सकती थी? हार कर उसे भी साथ लेना पड़ा।

उसके बाद लक्ष्मण को ख़बर लगी। वे भी हठ कर बैठे— तो साथ चलूँगा ही। उनका हठ कैसे टालते? छोटे भाई ौर पत्नी को लेकर रामचद्र वन के लिए चल पड़े।

उस समय अयोध्या का दृश्य देखने लायक़ था। सारे गर में कुहराम मच गया, सभी दुखी, विकल और शोकार्त्त उठे, कैकेयी को गालियाँ दी जाने लगीं। उस समय मालूम ड़ा, जैसे शोक का समुद्र उमड़ आया हो।

रास्ते में गुह नामक निषाद से मिलते हुए और स्थान थान पर ठहरते हुए रामचन्द्रजी प्रयाग आये। यहाँ भरद्वाज ादि से मिले। अरुन्धती ने सीता को पतिव्रत धर्म का उप- श दिया और तब मुनि की आज्ञा के अनुसार रामचन्द्र पञ्च- टी में जाकर रहने लगे।

इधर रामचन्द्र के शोक में दशरथ महाराज की मृत
गई। भरत और शत्रुघ्न ननिहाल में थे—रामचन्द्र तो वन
चले गये थे। नगरी अनाथ सी होगई। गुरु वशिष्ठ ने दूत
भेजकर भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल से बुलाया।

दोनों भाइयों ने आकर सब हाल सुना। भरत मात
बहुत क्रोधित हुए—उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। शत्रुघ्न
कुबरी को मारा-पीटा भी। तब भरत से राज्यारोहण
प्रार्थना की गई, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। बड़ा
वनवास करे और वे राज्य-सुख भोगें? भरत के लिए यह
म्भव था। उन्होंने रामचन्द्र को लौटा ले आने का नि
किया और इसी निश्चय के अनुसार सारे परिवार के साथ
की ओर चले। उनके साथ नगर के और भी बहुत से लोग
लिए।

लेकिन, रामचन्द्रजी किसी तरह लौटने को तैयार न हु
जिस बात के लिए, यह इतना सब हुआ, जिस बात के लिए
असमय में पिता को प्राण त्याग भी करना पड़ा, उनके प
उनकी वही बात अब टाल कैसे दी जाय? लाचार, रामच
की खड़ाऊँ लेकर भरतजी वापस आये और मंत्रियों के ज़ि
राज-कार्य सौंप, खड़ाऊँ को राज-सिंहासन पर प्रतिष्ठित क
स्वयं नगर से बाहर, आश्रम बना कर रहने लगे।

कुछ समय इसी तरह बीता। एक बार शूर्पनखा नाम
रावण की बहिन रामचन्द्र के रूप पर मोहित होकर उनके

आई। उस समय रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता के साथ बैठे हुए थे। जब शूर्पनखा ने अपना अभिप्राय प्रकट किया और रामचन्द्र ने उसे स्वीकार नहीं किया तो वह बहुत बिगड़ी। इस पर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिए।

नाक-कान कटने पर वह खर-दूषण नाम के अपने भाइयों के पास गई। खर-दूषण राक्षसों की बड़ी सेना लेकर रामचन्द्र से युद्ध करने आये। रामचन्द्र ने अकेले ही खर-दूषण के साथ उनकी सारी सेना नष्ट कर डाली। तब वह रावण के पास गई। रावण ने मारीच के साथ मिल कर इसका बदला लेने का निश्चय किया।

रावण ने मारीच को सुवर्ण का मृग बनाया और स्वयं भिक्षुक बना। सीताजी ने सुवर्ण का मृग देखा तो कहा—नाथ, मुझे यह मृग मार कर ला दो। रामचन्द्र मृग के पीछे चले, लक्ष्मण को सीता की रखवाली पर छोड़ गये। मारीच रामचन्द्र के तीर से मारा गया। मरते समय—हा सीता! हा लक्ष्मण!! कह कर वह चिल्लाया। सीता ने जब उसकी पुकार सुनी तो समझा कि रामचन्द्र ही किसी विपत्ति में पड़ गये हैं। हठ कर के उन्होंने लक्ष्मण को रामचन्द्र के पीछे भेजा।

इधर लक्ष्मण आश्रम से बाहर हुए, उधर भिक्षुक वेषधारी रावण सीता के दरवाज़े आ पहुँचा और भिक्षा देती हुई सीता को लेकर भाग गया। राम-लक्ष्मण जब लौटकर आये तो आश्रम

में सीता को नहीं देखा। वे दोनों बहुत विकल होकर
ओर सीता की खोज करने लगे ।

रावण सीता को लेकर भागा जा रहा था कि रास
उसे जटायु मिला । जटायु ने विलाप करती हुई सीत
देख कर रावण को युद्ध करने के लिए ललकारा ।
देर तक युद्ध करने के बाद जब जटायु के दोनों पंख
ने काट डाले और वह शक्तिहीन हो गया तब रावण
को लेकर अपनी पुरी लङ्का में पहुँचा और वहाँ उसने अ
वाटिका में सीताजी को रख दिया ।

राम-लक्ष्मण वन-वन में सीता को ढूँढ़ते फिरे । प
जटायु, शबरी आदि से भेंट हुई। पम्पासर में सुग्रीव से
की। उसके बड़े भाई वालि का बध करके उसे राज्य दिया
सुग्रीव के भेजे हुए बानर दसों दिशाओं में सीता को
निकले। उन्हीं में हनुमान भी थे। हनुमान समुद्र लाँघ कर
गये। वहाँ सीता का पता लगाया। पकड़े गये। रावण की
सभा में पहुँचे। रावण ने उनकी पूँछ में आग लगवा दी
लङ्का को उसी आग से जला कर हनुमानजी रामचन्द्र के
वापस आये ।

सीता का तो पता लग गया। उसके लिए बानर
और रीछों की एक बड़ी सेना तैयार हुई। नल और नील
के दो रीछों ने समुद्र पर पुल बाँधा और सेना लङ्का
पहुँची ।

ड़ी भयानक लड़ाई हुई। दोनों ओर के सैकड़ों योद्धा लड़े और मरे। अन्त में विजय रामचन्द्र की हुई। रावण परिवार के सहित मारा गया। उसका छोटा भाई विभीषण पहले ही रामचन्द्र की शरण में आ गया था। लङ्का का राज्य उसे सौंप कर, जानकीजी को साथ लेकर रामचन्द्र अयोध्या लौट आये।

अयोध्या में बड़े समारोह के साथ रामचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ। तीनों भाइयों और पत्नी के सहित बहुत दिनों तक रामचन्द्र ने सुखपूर्वक राज्य किया। यही संक्षेप में रामायण की कथा है।

जीवन पर एक दृष्टि

गोसाईं तुलसीदासजी अलौकिक महापुरुष थे। वे साधारण ब्राह्मण गृहस्थ के घर उत्पन्न हुए थे और बचपन में ही माता-पिता के द्वारा त्याग दिये गये थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध न हुआ था। वैवाहिक जीवन का सुख वे बहुत दिनों तक भोग न सके थे; लेकिन आज उन्हीं तुलसीदास के पाण्डित्य और कवित्व का लोहा सारा संसार मानता है। प्रसिद्ध समालोचक और रामायण के अँग्रेज़ी अनुवादक एडविन ग्रीव्स साहब ने रामायण के सम्बन्ध में लिखा है—

The Ramayan is not only their (Hindus) national epic, but has also this further merit, that it depicts the gaith and charector of

their cuntrymen in the most aithfful and the same time the most engaging light, that a knowledge of it can not but correct ma false European prejudices on the subjct a conduce to a fretor sympathy between t two races.

अर्थात्, रामायण केवल हिन्दुओं का राष्ट्रीय महाका ही नहीं है, बलिक उसमें एक ख़ास गुण भी है और वह यह वह अपने देश वासियों के विश्वास तथा चरित्र का एक स और आकर्षक चित्र खींच देती है। इसके परिणामस्वर रामायण का अनुशीलन करनेवाले यूरोपियनों के मन से सम्बन्ध के बहुत से अविश्वास और दुर्भावनाएँ दूर हो जा हैं और दोनों दलों में परस्पर सहानुभूति की वृद्धि होती है।

तुलसीदासजी की यही महानता है। वे अपने समय सबसे बड़े कवि थे। आज यद्यपि उनका भौतिक शरीर, धरि पर विद्यमान नहीं है, लेकिन सारा संसार उनकी कीर्ति क़ायल है।

कवि अपने समय का दर्पण या प्रतिबिम्ब कहा जाता है इसमें सन्देह नहीं कि गोसाईंजी अपने समय के दर्पण थे तत्कालीन समाज का जैसा जीवित चित्रण उनके पद्यों मिलता है, वह अलौकिक है और उतनी स्वाभाविकता, उत

सरलता से और भी किसी ने अपने समाज का ऐसा जीता-जागता चित्र खींचा हो, इसमें सन्देह है।

गोसाईं जी का जीवन-चरित प्रायः अन्धकार में ही है। अभीतक इनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी घटनाओं में मतैक्य नहीं हो सका है और बहुत सी बातों के सम्बन्ध में हमारी कोई जानकारी ही नहीं है, लेकिन तुलसीदास जी के ग्रन्थों में उनका जो उज्वल चरित्र, अलौकिक प्रतिभा, उदारता और महानता हमे दीख पड़ती है, वह अलौकिक है, अपूर्व है और तुलसीदास को विश्वसाहित्य में अजर-अमर बनाए रखने के लिए पर्याप्त है।

कवि की कृतियाँ ही उसके जीवन का सर्वस्व हैं। तुलसीदास के स्वभाव-चरित्र का परिचय हमें उनकी कविताओं में पद-पद पर मिलता है। तुलसीदासजी के विचार बड़े ऊँचे और उदार थे। सङ्कीर्णता की बदबू कभी उनके हृदय में स्थान नहीं पा सकी। वे जिस युग में उत्पन्न हुए थे, वह मत-मतान्तरों और बाद-पन्थों के लड़ाई-झगड़े का युग था। उस समय भिन्न धर्म और देवता को माननेवाला एक भक्त, दूसरे देवता को गाली देता और तिरस्कार करता था। शैव और शाक्त शिव और विष्णु को लेकर लड़े-मरते थे। शैव विष्णु को गालियाँ देता और शाक्त शिव को। मनुष्य का हृदय बहुत असहनशील हो गया था, देश का नैतिक पतन हो चुका था; लेकिन तुलसीदासजी ने ऐसे समय भी अपनी महानता

क़ायम रक्खी। उन्हें किसी पन्थ या मज़हब से द्वेष नहीं था उन्होंने कृष्ण, शिव, गणेश आदि सभी देवताओं की वन्द स्थान-स्थान पर की है, लेकिन, इससे उनकी राम-भक्ति कोई अन्तर पड़ गया हो, यह बात नहीं है। रामचन्द्र उनके सर्वस्व थे। सबकी बन्दना वे करते थे, सब को महत्ता देते थे; लेकिन—

"सियाराम मय सब जग जानी।"

उन्हें तो सभी जगह सीता-राम ही दीख पड़ते थे। उन दृष्टि में सीता-राम के अतिरिक्त और किसी को स्थान कहाँ इसीसे उन्हें किसी से लड़ाई-झगड़ा या राग-द्वेष करने ज़रूरत ही न पड़ती थी। लड़ाई आख़िर करते किससे, गा देते तो किसको?—सारा संसार तो उनके लिए 'सियारा मय हो रहा था। इस एक पद से तुलसीदास की विशाल हृ यता का जो अपूर्व परिचय हमें मिलता है, वह सचराचर न देखा जाता।

गोसाईंजी सुधारक भी बड़े ज़बर्दस्त थे। उन्हें ब आडम्बर या सामाजिक सङ्कीर्णता पसन्द नहीं थी। इस सम न्ध में उनके विचार बड़े उदार थे और वैसे प्रसङ्गों पर ज सामाजिक रूढ़ियों और समाज के पतन की चर्चाएँ आई उन्होंने खुली तौर से उनकी समालोचना की है, चुटकियाँ हैं और उनके लिए पश्चात्ताप किया है। वे भक्ति को प्रधान मा हैं, लेकिन और लोगों की तरह उसके लिए 'अधिकारी'

निर्णय नहीं कर देते। तुलसीदास की 'भक्ति' का दरवाज़ा हर एक के लिए खुला है। जो ही शुद्ध मन, सात्विक वृत्ति और सरल हृदय लेकर उपस्थित होगा, उसका पूजा स्वीकार की जायगी। उनके यहाँ—

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई॥

गोसाईंजी महाकवि थे। हमारे साहित्य को वे जो-कुछ दे गये हैं, वह अमूल्य है। उसकी नाप-तौल नहीं हो सकती। वैसी अपार साहित्य-सम्पत्ति पाकर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। यदि केवल एक तुलसीदासजी की रचनाएँ ही हमारे साहित्य में अवशिष्ट रह जायँ, तो भी संसार का कोई साहित्य हमारी बराबरी का दावा नहीं कर सकता। हमारी यह बात छोटे-मुँह बड़ी बात, या अनधिकार चर्चा नहीं है, किन्तु डा० ग्रियर्सन और ऐडविन ग्रीब्स-जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्त कण्ठ से इस बात को स्वीकार किया है।

गोसाईंजी में वर्णन करने की अद्भुत क्षमता थी। उनका वर्णन बाहरी चमक-दमक या वाह्य-सौन्दर्य का वर्णन नहीं होता था—वे प्रत्येक वस्तु के अन्तरतम में पैठकर कुछ ऐसी बातें देखते-सुनते और कहते थे, जिन्हें पढ़कर हमें अवाक् रह जाना पड़ता है। वे मनुष्य के शरीर का वर्णन करना पसन्द नहीं करते थे—सीताजी की कितनी बड़ी आँख हैं, कैसी नाक है, कैसे कपोल और दाँत हैं, इन बातों का लेखा लेने की ज़रूरत गोसाईंजी ने कभी नहीं समझी, वे सदा ही सीताजी के

हृदय को समझाने की चेष्टा करते रहे, इसमें उन्होंने पर्या
सफलता पाई। वे वाह्य-चित्रण की अपेक्षा अन्तर का चि
पाठकों के सामने रखना अधिक महत्वपूर्ण समझते और उसी
के लिए सचेष्ट रहते थे। इससे उनके वर्णन इतने सजीव, इतने
मर्मस्पर्शी और हृदय को पकड़ लेनेवाले हैं, जितना और
किसी कवि की कविता नहीं है। गोसाईंजी का दृष्टि-कोण भी
औरों से भिन्न था। सूर आदि महाकवियों ने जहाँ अपने कृष्ण
राधिका को विलास और शृंगार का पुतला बनाया है, वह
गोसाईंजी के राम और सीता त्याग, तपस्या और सात्विकत
के जीते-जागते उदाहरण बन बैठे हैं। यही तुलसीदास क
महत्ता है, यही उनका कवित्व है, यही उनकी अलौकिकता है

तुलसीदासजी के वर्णन हृदय को हिला देनेवाले हुए हैं
दुःख है स्थान की सङ्कीर्णता के कारण हम कुछ वैसे वर्ण
दृश्यों का अवतरण यहाँ नहीं कर सकते, लेकिन बिना उनक
चर्चा किये, हम रह भी नहीं सकते। रामायण पढ़ने वा
सभी सहृदय व्यक्तियों का उन दृश्यों से परिचय होगा।

तुलसीदासजी के ऋतु-वर्णन तो मशहूर ही हैं—उन वर्ण
में कई विशेषताएँ हैं। एक तो उनका शब्द-संगठन इतना म
बूत, विषय के अनुकूल और सुन्दर है कि अनायास ही मुँह
'वाह' निकल जाती है, इसके अतिरिक्त ऋतु-वर्णन के छल
इतनी चतुराई से नीति के उपदेशों का समावेश उसमें कर दि
गया है कि पढ़ते ही बनता है। इसी प्रकार जनक की वाटि

ों सीता राम का प्रथम सन्दर्शन, राम का वन गमन, अयोध्या
ा शोक-समुद्र में डूब जाना, गुह निषाद से भेंट, वन-पथ में,
शरथ का मरण, पञ्चवटी-प्रवास, रावण से युद्ध और अयोध्या
ौटने पर भरत से मिलने आदि का वर्णन इतना मोहक,
ाकर्षक और स्वाभविक हुआ है कि पढ़ते ही बनता है।
ुलसीदासजी ने जहाँ सीता-राम का प्रथम मिलाप का वर्णन
िया है, वह अत्यन्त सात्विक भावों से ओत-प्रोत तथा प्रेम
ौर उसके विकास का अद्भुत चित्र है। कुछ पंक्तियाँ वहाँ की
द्धृत की जाती हैं—

देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरञ्चि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रकट देखाई॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि-गृह दीप-शिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं विदेह कुमारी॥
सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा विचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि॥
तात जनक तनया यह सोई। धनुष जज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई॥
जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपन्थ पग धरै न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥
जिन्हकै लहहिं न रिपु रनपीठी। नहिं लावहिं परतिय मनु दीठी।

कितना दिव्य वर्णन है! कैसी सात्विक और दिव्य उक्तियाँ

हैं !! राम-लक्ष्मण गुरु की आज्ञा से राजा जनक की फुलवा
में आये हुए हैं। उसी समय राजकुमारी सीता भी भवानी
पूजा करने के लिए सखियों के साथ आती हैं। दोनों की मुल
क़ात होती है। एक-दूसरे को देखता है—एक-दूसरे की छ
पर मोहित होता है। रामचन्द्र छोटे भाई से कहते हैं—इस
अलौकिक शोभा देखकर मेरा मन क्षुभित हो उठा है; लेकि
यह रघुवंशियों का स्वभाव है कि वे बुरे रास्ते पर पैर न
देते। मुझे अपने मन का पूरा विश्वास है, जिसने स्वप्न में
पराई स्त्री का दर्शन नहीं किया।

इस उक्ति में कितनी सात्विकता, कितनी संयतता है,
बतलाने की ज़रूरत नहीं। सारी रामायण इसी प्रकार के वर्ण
से भरी पड़ी है। जिन्हें गोसाईंजी की काव्य-कला-कुशल
देखने की इच्छा हो, वे एक बार रामायण पढ़ें। रामायण में
जितना ही पैठेगा, उसे उतनी ही गहराई मिलेगी। धन्य तु
सीदास !!

आज तीन सौ वर्षों से गोसाईंजी हमारे बीच में नहीं
लेकिन उनका यशः शरीर आज भी हमें पग-पग पर सच्
दृढ़ता और वीरता का सन्देश दे रहा है। इस रूप में तुल
दासजी अमर हैं। वे सदा अमर रहेंगे। हम अपने इन कति
पंक्तियों से उनकी पूजा करते हैं—

धारण कर उसको हुई थी माँ की कोख धन्य
पाकर के उसे ऊँचे परिजन के सर थे।

कुल उसे पाकर कृतार्थ हो गया था, देश—
देश उसे फूले न समाते प्राप्त कर थे ।।
गोद में खिला के उन्हें मुदित हुई थी मही
मानते सफल जन्म नारी और नर थे ।
लेकर अनूठा और नूतन सँदेशा 'मुक्त'
आये अवनी पै तुलसी-से कविवर थे ॥
पंडित था, ज्ञानी था, गुनी था, भक्त एक ही था,
बस उसने पुनीत राम-कथा गायी थी ।
भव-भय-जटित कुटिल कलिकाल के जो
जीव हैं उन्हीं के लिए तरणी बनाई थी ॥
लेखनी में मूर्तिमती कविता ही मानो स्वयं
धारण कर मसि रूप उनकी समायी थी ।
मुग्ध हो के भारती ही या कि तुलसी के 'मुक्त'
छन्दों में ललित स्वर्ग से उतर आयी थी ।